[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

रवीन्द्र-साहित्य

भाग २

धन्यकुमार जैन

मूल्य दो रुपया

जिल्दका ।) चार आना ज्यादा

हिन्दी-हिन्दुस्तानीमें
महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरका
सम्पूर्ण साहित्य एकसाथ एक जगह
मिल सके इस उद्देश्यसे यह
ग्रन्थमाला प्रकाशित की जा रही है
आशा है
सुरुचि-सम्पन्न पाठक-पाठिकाएँ और
पुस्तकालय इसे अवश्य अपनायेंगे

प्रकाशक
राजेन्द्रनाथ वीतराग जैन
हिन्दी-ग्रन्थागार
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट, बड़ाबाजार : कलकत्ता

अभिनव आर्ट प्रेस, ६१, बड़तल्ला स्ट्रीट, कलकत्तामें मुद्रित

रवीन्द्र-साहित्य

भाग ३

अनुवादक

धन्यकुमार जैन

हिन्दी-ग्रन्थागार
पी-१५, कलाकार स्ट्रीट
बड़ाबाजार : कलकत्ता

सूची

रचना-परिचय

हिन्दी शीर्षक	बंगला शीर्षक	मूल रचनाकाल
प्राण-मन	प्राण-मन	१९७८
प्यासा पत्थर	क्षुधित पाषाण	१९५२
दृष्टिदान	दृष्टिदान	१८५५
चन्ना फूः	खोखा बाबूर प्रत्यावर्तन	१८४८
जिन्दा और मुरदा	जीवित ओ मृत	१८४९
एक रात	एक रात्रि	१८४९
एक बरसाती कहानी	एकटा आषाढ़े गल्प	१८४९
मुक्तिका उपाय	मुक्तिर उपाय	१८४८
दुलहिन	गिन्नी	१८४८
एक चितवन	एकटा चाहनि	१९७८

प्राण-मन

१

मेरी खिड़कीके सामने लाल-मिट्टीकी सड़क है।

उसपर, लदी-हुई बैलगाड़ियाँ चलती हैं, पयालके गट्ठर लादे सन्थाल स्त्रियाँ हाटको जाती हैं और शामको हँसती-बतराती घर लौटती हैं।

पर, मनुष्यके चलने-फिरनेकी ओर आज मेरा ध्यान नहीं।

जीवनका जो भाग अस्थिर है, नाना चिन्ताओंसे उद्विग्न है, नाना चेष्टाओंसे चंचल है, वह आज ढक गया है। शरीर आज रुग्न है, मन आज अनासक्त है।

लहरोंवाला समुद्र बाहरी समुद्र है; भीतर जहाँ पृथिवीकी गंभीर गर्भशय्या है, लहरें वहाँकी बातोंको गड़बड़ीमें डालकर भुला देती हैं। लहरें जब ठहर जाती हैं तो समुद्र अपने गोचरके साथ अगोचरकी, गहरे तलेके साथ ऊपरी भागकी अखंड एकतामें स्तब्ध होकर विराजा करता है।

उसी तरह मेरे सचेष्ट प्राणको छुट्टी मिलते ही उस गंभीर प्राणमें मुझे स्थान मिला, जहाँ संसारके आदिकालका लीलाक्षेत्र है।

जब तक मैं राह-चलता पथिक था, तब तक मुझे उस सड़कके किनारेवाले वटवृक्षकी ओर देखनेका समय नहीं मिला ; आज राह छोड़कर खिड़कीमें आ खड़ा हुआ हूँ, आजसे उसके साथ मेरा समझौता शुरू हो गया।

मेरे चेहरेकी ओर देख-देखकर क्षण-क्षणमें वह व्याकुल हो उठता है। मानो कहना चाहता है—"समझे नहीं ?"

मैंने सान्त्वना देते हुए कहा—"समझ गया, सब समझ गया ; तुम इस तरह व्याकुल मत होओ।"

कुछ देरके लिए वह फिर शान्त हो गया। फिर देखा कि एकाएक चंचल हो उठा ; फिर वही थरथर, झरझर, झलमल।

फिर उसे शान्त करके कहा—"हाँ हाँ, तुम्हारी बात ठीक है ; मैं तुम्हारा खेलका साथी हूँ, लाखों-करोड़ों वर्षोंसे इस मिट्टीके खेल-घरसे मैंने भी तुम्हारी ही तरह अंजुलि भर-भरकर सूर्यालोक पान किया है, धरणीके स्तन्य-रसमें मैं भी तुम्हारा हिस्सेदार था।"

तब उसके भीतरसे सहसा हवाका एक शब्द सुनाई दिया, वह मुझसे कहता रहता—"हाँ हाँ हाँ।"

जो भाषा रक्तके मर्मरसे मेरे हृत्पिण्डमें बजा करती है, जो प्रकाश-अन्धकारकी निःशब्द आवर्तन-ध्वनि है, वह भाषा उसके पत्र-मर्मरके द्वारा मेरे पास तक आ पहुंचती है। वह भाषा विश्व-संसारकी सरकारी भाषा है।

उसकी मूल वाणी है—"हूँ, हूँ ; मैं हूँ ; हम सब हैं।"

यह बड़ी खुशीकी बात है। उस खुशीसे विश्वके अणु-परमाणु थरथर काँप रहे हैं।

उस वटवृक्षके साथ मेरी आज उसी एक-भाषामें उसी एक खुशीकी बातचीत हो रही है।

वह मुझे कहता—"तुम हो न ?"

मैं जवाब देता—"हूं, हूं, मैं हूं, मीत !"

इसी तरह 'हूँ' और 'हो' मिलकर दोनों एक तालसे ताली बजा रहे हैं।

२

उस वटवृक्षसे जब मेरी बातचीत शुरू हुई, तब वसन्तसे उसके पत्ते कच्चे-कोमल थे ; उनकी अनेक संधोंमेंसे आकाशसे भागा-हुआ प्रकाश घासपर आकर पृथिवीकी छायाके साथ गलबहियाँ डाले छिपे-छिपे खेला करता था।

उसके बाद आषाढ़की वर्षा उतरी। उसके पत्तोंका रंग बादलों-जैसा गहरा होने लगा। आज उन हरे पत्तोंकी राशि प्रवीणोंकी पक्की बुद्धिकी तरह गाढ़ी हो गई। बाहरके प्रकाशको अब उनकी किसी भी सँधमेंसे घुसनेका रास्ता नहीं मिलता। तब पेड़ था गरीबकी लड़कीकी तरह ; आज वह धनी-घरकी गृहिणी है ; मानो पर्याप्त परितृप्तिका चेहरा हो।

आज सवेरे उसने अपने मरकत-मणिका बीस लड़ियोंवाला हार झिलमिलाते हुए मुझसे कहा—"सिरपर इस तरह ईंट-पत्थर ओढ़कर क्यों बैठे हुए हो ? मेरी तरह एकदम बाहर चले आओ न !"

मैंने कहा—"मनुष्यको जो भीतर-बाहर दोनों तरफ सम्हालते हुए चलना पड़ता है।"

पेड़ जरा हिल-हिलाकर बोल उठा—"समझ नहीं सका ?"

मैंने कहा—"हमारी दो दुनिया हैं, एक भीतरकी और दूसरी बाहरकी।"

पेड़ने कहा—"यह तुमने खूब कहा ! अजी, भीतरकी चीज है कहाँ ?"

"मेरे अपने ही घेरेमें।"

"वहाँ करते क्या हो ?"

"सृष्टि करता हूँ।"

"सृष्टि, और घेरेके भीतर ! तुम्हारी बातें समझना मुश्किल है।"

मैंने कहा—"जैसे तटोंके बन्धनमें पड़कर नदी होती है, वैसे घेरेमें घिरकर ही तो सृष्टि होती है। एक ही चीज घेरेमें घिरकर कहीं हीरेका टुकड़ा होता है तो कहींका बड़का पेड़।"

पेड़ने कहा—"तुम्हारा घेरा कैसा है, जरा सुनूं तो सही ?"

मैंने कहा—"वह मेरा मन है। उसमें जो-कुछ आकर अटक जाता है वही हो जाता है सृष्टि।"

पेड़ने कहा—"तुम्हारी वह घेरेमें घिरी सृष्टि हमारे चन्द्र-सूर्यके सामने कितनी-सी दिखाई देती है ?"

मैंने कहा—"चन्द्र-सूर्यसे उसे तो नापा नहीं जा सकता ; चन्द्र-सूर्य तो बाहरकी चीज हैं।"

"तो फिर नापोगे किससे ?"

"सुखसे, खासकर दुःखसे।"

पेड़ने कहा—"यह देखो, पुरवैया हवा मेरे कानोंमें बातें करती

है, मेरे प्राणोंमें उसकी प्रेरणा जाग उठती है; पर तुम न-जाने काहेकी बातें कह गये, मैं कुछ समझ ही न सका।"

मैंने कहा—"समझाऊं कैसे? तुम्हारी उस पुरबैया हवाको ज्यों ही हमने अपने घेरेके भीतर वीणाके तारोंमें बाँध दिया त्यों ही वह एक सृष्टिसे दूसरी सृष्टिमें आ पहुंची! यह सृष्टि किस आकाशमें स्थान पाती है, किस विराट चित्तके स्मरणाकाशमें, सो मैं भी ठीक नहीं जानता। मालूम होता है, मानो वेदनाका कोई आकाश है; और वह आकाश नापनेका आकाश नहीं।"

"और उसका काल?"

"उसका काल भी घटनाका काल नहीं, वेदनाका काल है। इसीसे वह काल संख्याके परे है।"

"दो आकाश और दो कालोंके जीव हो तुम, तुम अद्भुत हो। तुम्हारी भीतरकी बातें मैं कुछ भी नहीं समझा।"

"न समझे तो न सही।"

"मेरे बाहरकी बातें तुम ही कौनसे ठीक-ठीक समझते हो?"

"तुम्हारी बाहरकी बात मेरे भीतर आकर जैसी बन जाती है, उसे अगर समझना कहो तो वह समझना है, अगर गीत कहो तो गीत है, कल्पना कहो तो कल्पना है।"

३

पेड़ने अपनी सारी-की-सारी डालोंको उठाकर मुझसे कहा—"जरा ठहरो। तुम बहुत ज्यादा सोचा करते हो, और बकते भी बहुत हो।"

सुनकर मैंने सोचा, बात तो सच है। मैंने कहा—"चुप रहनेके लिए ही तुम्हारे पास आता हूँ, पर अभ्यास-दोषसे चुप रहते हुए भी बड़बड़ाता रहता हूँ; जैसे कोई-कोई सोते-सोते चला करता है।"

कागज और पेन्सिल उठाकर फेंक दी, उसीकी तरफ अनिमेष दृष्टिसे देखता रहा। उसकी चिकनी पत्तियाँ उस्तादकी उंगलियोंकी तरह आलोक-वीणाके तारोंपर द्रुत-तालसे पड़ने लगीं।

सहसा मेरा मन बोल उठा—"यह तुम जो देख रहे हो और यह मैं जो सोच रहा हूँ, इनके बीच मेल कहाँपर है?"

मैंने उसे डपटकर कहा—"फिर तुम्हारा प्रश्न? चुप रहो।"

वह चुप रहा, एकटक देखता रहा। समय बीतता गया।

पेड़ने कहा—"अब बताओ, सब समझ गये?"

मैंने कहा—"समझ गया।"

४

वह दिन तो चुपचाप ही बीत गया।

दूसरे दिन मेरे मनने मुझसे पूछा—'कल पेड़की तरफ देखते-देखते अचानक जो कह उठे थे कि 'समझ गया', सो क्या समझे, बताओ तो?"

मैंने कहा—"मनुष्यके प्राण अपने ही अन्दर नाना चिन्ताओंसे घुलघुलाकर मैले हो गये हैं। इसलिए प्राणोंका विशुद्ध रूप देखना हो, तो देखना चाहिए उस घासकी ओर, उस पेड़की ओर।"

"कैसा देखा तुमने?"

"देखा, उन प्राणोंमें अपने ही-आपमें कितना आनन्द है ! अपनेको लेकर उसने अपने पत्ते-पत्तेपर, फूल-फूलपर, फल-फलपर कितने जतनसे कैसे-कैसे नक्शे उतारे हैं, कैसे-कैसे रंग भरे हैं, कितनी गन्ध, कितना रस, कोई ठीक है ! इसीसे उस बड़की ओर ताकता हुआ मन-ही-मन कह रहा था—ओ वनस्पति, जनमते ही पृथिवीपर प्रथमें प्राण जो आनन्द-ध्वनि कर उठा था, वही ध्वनि तुम्हारी शाखा-शाखामें हो रही है। वही आदियुगकी सरल हँसी तुम्हारे पत्ते-पत्तेपर झलमला रही है। मेरे भीतर वह प्रथम प्राण आज चंचल हो उठा है। चिन्ताओंकी चहारदीवारीके भीतर वह बन्दी होकर बैठा था, तुमने उसे बुलाकर कहा है—अरे, आ नें रे उजालेमें, हवामें आ ; और मेरी ही तरह ले आ अपने रूपकी तूलिका, रंगकी कटोरी, और रसका प्याला !"

मन मेरा कुछ देर चुप बना रहा। उसके बाद कुछ उदास होकर बोला—"तुम प्राणकी ही बातको लेकर कुछ ज्यादती किया करते हो ; मैं जो इतना सामान इकट्ठा करता हूँ, उसकी बातें इस तरह सजा-सजाकर क्यों नहीं कहते ?"

"उसकी बात और क्या कहूँ ! उसने खुद ही अपने टंकार-झंकार-हुंकार-झंकारसे आकाशको कँपा रखा है। उसके भारसे, उसकी जटिलतासे, उसके जंजालसे पृथिवीका हृदय व्यथित हो उठा है। बहुत सोचता हूं, समझमें नहीं आता, इसका अन्त कहाँ है। थाकपर थाक और कितनी थाकें लगेंगी, गाँठोंपर गाँठ और कितनी गाँठें गड़ेंगी ? इसी प्रश्नका उत्तर था उस पेड़के पत्तोंपर।"

"अच्छा! क्या जवाब था, सुनूँ?"

"वह कहता है, प्राण जब तक नहीं हैं, तब तक सब-कुछ केवल स्तूप है, सब-कुछ भार है। प्राणोंका स्पर्श लगते ही उपकरणोंके साथ उपकरण, सामानके साथ सामान आप ही मिल-जुलकर अखंड सुन्दर हो जाता है। उस सुन्दरको ही देखो, बनविहारी। उसीकी वंशी तो बज रही है वटकी छायामें।"

५

तब, न मालूम कबकी कौन-सी पिछली रैन थी, पौ फट चुकी थी।

प्राणने अपनी सुप्ति-शय्या छोड़ दी। उसी दिन वह पहले-पहल राहपर निकला अज्ञातसे मिलने जानेके लिए, अचेतन जगतके उस पार, खुले हुए अनन्त मैदानकी ओर।

तब उसकी देहमें न तो थकान थी, और न मनमें चिन्ता; उसकी राजपुत्रकी-सी पोशाकमें न तो कहीं धूल लगी थी और न छेद ही हुए थे।

आज आषाढ़के प्रातःकालमें उस अक्लान्त निश्चिन्त प्रसन्न प्राणको देखा, उस वटवृक्षमें। उसने अपनी शाखाएँ हिलाकर मुझसे कहा—"नमस्कार!"

मैंने कहा—"राजपुत्र और मरु-दैत्यमें लड़ाई कैसी चल रही है, सो तो बताओ?"

उसने कहा—"अच्छी चल रही है, एक बार चारों ओर आँख पसारकर देखो न।"

आँख उठाकर देखा, उत्तरका मैदान घाससे ढका पड़ा है, पूरबका मैदान धानके अंकुरोंसे पट गया है, दक्षिणमें बाँधके किनारे ताड़वृक्षोंकी पंक्ति खड़ी है ; पश्चिममें शाल-ताड़-महुआ आम-जामुन-खजूर सबने मिलकर ऐसी भीड़ लगा दी है कि दिगन्त दिखाई ही नहीं देता।

मैंने कहा—"राजपुत्र, धन्य हो तुम ! तुम कोमल हो, किशोर हो ; और दैत्य जैसा प्रवीण है, वैसा ही कठोर ; तुम छोटे हो, तुम्हारा तूण छोटा है, तुम्हारे तीर छोटे हैं ; और वह है विपुल, उसका वर्म मोटा है, उसकी गदा भारी है। फिर भी तो देखता हूँ, तुम्हारी ध्वजा उड़ रही है दिशा-विदिशाओंमें ; दैत्यकी पीठपर तुमने पाँव रख दिया है, पत्थर हार मान रहा है, धूल सब-कुछ मंजूर करके दस्तखत किये दे रही है।"

वटवृक्षने कहा—"तुमने इतना समारोह कहाँ देखा ?"

मैंने कहा—"तुम्हारी लड़ाईको मैं देखता हूँ शान्तिके रूपमें, तुम्हारे कर्मको मैं देखता हूँ विश्रामके वेशमें, तुम्हारी विजयको मैंने देखा है नम्रताकी मूर्तिमें। इसीलिए तो तुम्हारी छायामें साधक आकर बैठे हैं, उस सहज युद्ध-जयके मन्त्र और उस सहज अधिकारकी सन्धि सीखनेके लिए। प्राण किस तरह अपना काम करते हैं, यह दिखानेके लिए ही वन-वनमें तुमने उसकी पाठशालाएँ खोल दी हैं। इसीसे जो क्लान्त हैं, थके हुए हैं, वे तुम्हारी छायामें आते हैं ; और जो आर्त हैं, दुःखी हैं, वे तुम्हारी वाणी ढूँढ़ते फिरते हैं।"

मेरी स्तुति सुनकर वटके भीतरका प्राण-पुरुष शायद खुश

हो गया ; कहने लगा—"मैं निकल पड़ा हूँ मरु-दैत्यके साथ लड़ाई लड़ने, मगर मेरा एक छोटा भाई है, न-जाने किस लड़ाईमें कहाँ चला गया, मुझे अब उसकी कुछ टोह ही नहीं मिलती। कुछ देर पहले तुम क्या उसीकी बात कह रहे थे ?"

"हाँ, उसीका हमने नाम रख दिया है मन।"

"वह मुझसे चंचल है। किसी बातमें उसे सन्तोष नहीं। उस अशान्तकी खबर मुझे दे सकते हो, कहाँ है वह ?"

मैंने कहा—"कुछ-कुछ जरूर दे सकता हूँ। तुम लड़ रहे हो जीनेके लिए, वह लड़ रहा है पानेके लिए। और-भी दूर और एक लड़ाई चल रही है छोड़नेके लिए। तुम्हारी लड़ाई है अचेतनके साथ, उसकी लड़ाई है अभावके साथ। और-भी एक लड़ाई है, वह है संचयके साथ। लड़ाई जटिल होती जा रही है ; व्यूहमें जो घुस रहा है, उसे व्यूहसे निकलनेका रास्ता ढूँढ़े नहीं मिल रहा। हार-जीत अनिश्चित होनेसे चक्करमें पड़ जाता है। इस दुविधामें तुम्हारी यह हरी पताका योद्धाओंको आश्वासन दे रही है। कह रही है—'जय, प्राणोंकी जय !' गानकी तान बढ़ती ही चलती है, आगे वह किस सप्तकसे किस सप्तकमें चढ़ गई, कोई ठिकाना नहीं ! इस स्वर-संकटमें उसका तम्बूरा अपने सरल तारसे कह रहा है—'भय नहीं, डर नहीं, डरनेकी कोई बात नहीं।' कह रहा है—"यह देखो, मूल सुर मैंने बाँध रखा है, यह आदि प्राणका स्वर है। सभी उन्मत्त तानें इस सुरसे सुन्दरके स्थायीमें आकर मिलेंगी, आनन्दके गानमें आकर एक हो जायँगी। सम्पूर्ण पाना, सम्पूर्ण देना फूलकी भाँति खिल उठेगा, फलकी तरह फल उठेगा।"

प्यासा पत्थर

पूजाकी छुट्टियोंमें पछाँहकी सैर करके मैं अपने एक रिश्तेदारके साथ कलकत्ता लौट रहा था। इत्तिफाकसे रेलमें एक सज्जनसे भेंट हो गई; और बातचीतका सिलसिला जम गया। उनका पहनावा देखकर पहले तो मुझे यह गलतफहमी हुई कि शायद वे दिल्लीवाल मुसलमान हैं। बादमें, उनकी बातें सुनकर मैं और-भी ज्यादा भूलभुलैयामें पड़ गया। हरएक विषयमें वे इस ढंगसे बातचीत करने लगे कि जैसे विधाता दुनियाके सभी काम उनसे सलाह-मशविरा करके करते हों। तमाम दुनियामें भीतर ही भीतर कैसी-कैसी बिन-देखी और बिन-सुनी बारदातें हो रही हैं, रूसी लोग कितने आगे बढ़ गये हैं और बढ़ते ही जा रहे हैं, अंगरेज लोग कैसे-कैसे खुफिया इरादे बाँध रहे हैं, हिन्दुस्तानकी देशी रियासतोंमें न-जाने कैसी एक खिचड़ी-सी पकती जा रही है, और हम इन सभी बातोंसे बिलकुल नावाकिफ रहकर कैसे बेफिक्र पड़े खर्राटे ले रहे हैं, वगैरह-वगैरह।

काफी नई-नई बातें सुना चुकनेके बाद अन्तमें उन्होंने मुसकराते हुए कहा—"There happen more things in heaven and earth, Horatio, than are reported in your newspapers." यानी "होरेशिओ, तुम्हारे इन अखबारोंमें छपनेवाली खबरोंसे जमीन और आसमानमें कहीं ज्यादा बारदातें हुआ करती हैं!"

असलमें, अबकी बार हम पहले-ही-पहल घरसे बाहर निकले

थे, इसलिए उनकी बातचीत और रंग-ढंग देखकर दंग रह गये। हजरत जरा-जरा-सी बातपर कभी विज्ञानका, कभी वेदका और कभी चटसे फारसी बैतोंका ऐसा हवाला दे बैठते कि हमारी अक्ल ही काम न करती। विज्ञान, वेद और फारसी भाषामें हमारा कोई दखल न होनेसे उनके प्रति हमारी श्रद्धा बराबर बढ़ती ही गई। यहाँ तक कि मेरे थियासोफिस्ट मित्रके मनमें यह बात जमकर बैठ गई कि उनका किसी अलौकिक शक्तिसे कुछ-न-कुछ सम्बन्ध जरूर है; फिर चाहे वह किसी मैग्नेटिज्मसे हो या दैवशक्तिसे, या सूक्ष्म-शरीर या उसी तरहकी किसी और चीजसे हो। वे इस असाधारण व्यक्तिकी छोटीसे छोटी बात इतनी भक्ति और इतनी दिलचस्पीके साथ सुन रहे थे कि बाहरका उन्हें जरा भी होश न था; और साथ ही मुझसे छिपाकर उनकी कोई-कोई बात वे नोट भी कर रहे थे। ताज्जुब है, वह आसाधारण व्यक्ति भी भीतर ही भीतर इस बातको ताड़ गया था, और मन-ही-मन खुश भी हो रहा था।

गाड़ी आकर जब जंक्शनपर खड़ी हुई, तो हम दूसरी गाड़ीकी इन्तजारीमें वेटिंग-रूममें जाकर ठहर गये। रातके करीब दस साढ़े-दस बजे होंगे। मालूम हुआ कि रास्तेमें कहीं कुछ गड़बड़ी हो जानेसे गाड़ी आज लेट हो गई है। मैं टेबिलपर बिस्तर बिछाकर जरा सो लेनेकी तजबीजमें लगा ही था कि इतनेमें उन साहबने एक बड़ा दिलचस्प किस्सा छेड़ दिया; ऐसा कि उस रातको फिर किसीको नींद ही नहीं आई। वे कहने लगे :—

राज्यकी शासन-व्यवस्थाके विषयमें जरा-कुछ मतभेद हो

जानेसे जूनागढ़का काम छोड़कर जब मैं हैदराबाद निजाम-सरकारमें दाखिल हुआ, तब मुझे जवान और मजबूत आदमी देखकर वहाँकी सरकारने भड़ौंचमें रूईकी चुंगीका दरोगा बना दिया।

भड़ौंच बड़ी रमणीक जगह है। निर्जन सुनसान पहाड़ियोंके नीचेसे, बड़े-बड़े जंगलोंमें होकर वहाँकी सुस्ता नदी (संस्कृत 'स्वच्छतोया'का अपभ्रंश हो सकता है) पत्थरकी छोटी-मोटी बटियोंसे मुखरित अपने निर्धारित मार्गसे निपुण नर्तकीकी तरह कदम-कदमपर टेढ़ी-तिरछी होती हुई तेजीसे नाचती हुई चली गई है। ठीक उस नदीके किनारे ही संगमरमरसे बने हुए डेढ़-सौ सीढ़ियोंसे सुशोभित बहुत ऊँचे घाटके ऊपर एक सफेद संगमरमरका महल पहाड़के पैरोंके पास अकेला खड़ा था; उसके आस-पास कहीं भी कोई बस्ती नहीं। भड़ौंचकी रूईकी हाट और बस्ती वहाँसे बहुत दूर थी।

लगभग ढाई सौ वर्ष पहले, दूसरे शाह महमूदने अपने भोग-विलासके लिए, ऐसे एकान्त स्थानमें ऐसा रमणीक महल बनवाया था। किसी जमानेमें वहाँ, स्नानागारके फव्वारेके मुँहसे गुलाबजलकी धाराएँ निकला करती थीं और बालूसे ठंडे किये-गये जंगलके उस एकान्त महलमें सफेद संगमरमरके तर आसनपर बैठी हुई जवान ईरानी सुन्दरियाँ अपने कोमल नंगे पद-पल्लवोंको साफ-सुथरे पानीमें फैला-फैलाकर, नहानेके पहले अपने लम्बे काले घुँघराले बालोंको बखेरकर सितार गोदमें लिये, अंगूरी लताओंकी तरह झूमती हुई गजल गाया करती थीं।

अब वे फव्वारे नहीं चलते, वे गीत भी नहीं होते, और न अब पहलेकी तरह उस सफेद संगमरमरपर उन गोरे नंगे पाँवोंके कोमल तलवे ही पड़ते हैं। अब तो वह महल हम-जैसे एकान्त-वाससे घबड़ाये हुए महसूल-कलेक्टरोंका बहुत बड़ा और बिलकुल सुनसान 'क्वार्टर' बना हुआ है। मगर, दफ्तरके बूढ़े क्लार्क करीम खाँने मुझे उस महलमें रहनेके लिए बार-बार मना किया था। उसने कहा था—"तबीयत हो तो, दिनमें भले ही रहिये, मगर रात वहाँ हरगिज न बिताइयेगा।" तब मैंने उसकी बात हँसीमें उड़ा दी थी। और नौकरोंने तो साफ तौरसे कह दिया कि 'शाम तक तो वे यहाँ कामपर रहेंगे, पर रातको हरगिज न रहेंगे।' मैंने कहा, "ठीक है।" असलमें, वह मकान इतना बदनाम था कि रातको चोर तक उसमें घुसनेकी हिम्मत न करते।

पहले-पहल जब मैंने उस सुनसान पत्थरके महलमें कदम रखा, तो उसका सन्नाटा अजगरकी तरह मेरी छातीपर बैठ गया। मुझसे जहाँ तक बनता, बाहर-ही-बाहर रहता और काम-काजसे खूब थककर रातको वहाँ लौटता; और जाते ही सो जाता।

लेकिन, एक हफ्ता भी न बीत पाया होगा कि उस महलके एक अजीब नशेने आहिस्ता-आहिस्ता मुझपर कब्जा-सा करना शुरू कर दिया। मेरी उस हालतका बयान करना भी मुश्किल है और उस बातपर किसीको विश्वास दिलाना तो और-भी मुश्किल है। सारा-का-सारा महल मानो किसी बड़े-भारी अजगरकी तरह मुझे अपने जठरस्थ मोह-रससे धीरे-धीरे पचाने लगा।

शायद उस मकानमें घुसनेके साथ ही मुझपर उसकी प्रक्रिया शुरू हो गई थी ; पर मैंने जिस दिन सचेतन दशामें पहले-पहल उसे महसूस किया, उस दिनकी बातें मुझे साफ-साफ याद हैं।

गरमियोंके दिन थे। रूईका बाजार ढीला था ; और मेरे हाथमें कोई खास काम भी न था। सूरज छिपनेके कुछ पहले मैं उस नदी किनारेके घाटके नीचेकी सीढ़ियोंपर आराम-कुर्सीपर बैठा आराम कर रहा था। नदी उन दिनों सूख-सी गई थी। उस पारका दूर तक फैला हुआ बालू-तट डूबते हुए सूरजकी आभासे रंगीन हो उठा था। इस पार घाटकी सीढ़ियोंके नीचे साफ और उथले पानीमें पत्थरकी गोल-गोल बटियाँ चमक रही थीं। उस दिन कहीं भी जरा हवाका नाम तक न था। पासके पहाड़ी जंगलसे बन-तुलसी, पुदीना और सौंफकी उठती हुई सुगन्धिने स्थिर आकाशको कुछ भारी और चंचल-सा कर रखा था।

सूर्य जब पहाड़की चोटीके पीछे छिप गया, तो चटसे दिनकी नाट्यशालामें मानो एक लम्बी छाया-यवनिका-सी पड़ गई। उस जगह, बीचमें पहाड़ पड़ जानेसे सूर्यास्तके समय प्रकाश और अन्धकारका मेल देर तक नहीं ठहरता। घोड़ेपर सवार होकर कहीं घूम आनेके लिए मैं उठना ही चाहता था कि इतनेमें सीढ़ियोंपर एकसाथ बहुत-सी पग-ध्वनियाँ सुनाई दीं। पीछेकी ओर मुड़कर देखा तो कोई नहीं !

कानोंको भ्रम हो गया होगा, ऐसा समझकर मैं मुड़कर जो बैठा, तो फिर एकसाथ बहुत-सी पग-ध्वनियाँ सुनाई दीं ; जैसे

बहुत-सी सखियाँ मिलकर दौड़ती-फुदकती हुईं उतर रही हों। कुछ आशंका लिये हुए एक तरहका अपूर्व पुलक मेरे सारे अंगोंमें फैल गया। यद्यपि मेरे सामने कोई भी मूर्ति न थी, फिर भी प्रत्यक्षवत् स्पष्ट मालूम होने लगा कि ग्रीष्मकी उस संध्यामें प्रमोद-चंचल तरुणियोंका एक झुंड नदीके पानीमें नहाने आ रहा है। यद्यपि उस संध्याके समय निस्तब्ध पर्वतके नीचे, नदी-तटपर, निर्जन प्रासादमें, कहीं भी कोई शब्द नहीं हो रहा था, फिर भी मानो मैंने स्पष्ट सुना कि झरनेकी सहस्र-धाराकी तरह कुतूहल-पूर्ण कल-हास्य करती और एक दूसरेका तेजीसे पीछा करती हुईं स्नानार्थिनी तरुणियाँ ठीक मेरे बगलसे निकल गईं। किसीने मेरी तरफ देखा तक नहीं! मानो वे मेरे लिए अदृश्य हों और मैं उनके लिए। नदी पहलेकी तरह शान्त थी; पर मैं अपनी आँखोंके सामने साफ देखने लगा कि स्वच्छतोयाकी कम-गहरी जलधारा एकसाथ बहुत-सी वलय-झंकृत बाहुओंसे विक्षुब्ध हो उठी, हँस-हँसकर सखियाँ एक दूसरेपर पानी उछालने लगीं और तैरनेवालियोंके चंचल पदाघातोंसे पानीकी बूँदें मोतियोंकी तरह आसमानमें बिखरने लगीं।

मेरे हृदयमें एक प्रकारका कम्पन शुरू हो गया; वह उत्तेजना या भयके कारण था, या, आनन्द या कुतूहलके कारण, मैं कुछ नहीं कह सकता। भीतरसे मेरी बड़ी तबीयत होने लगी कि अच्छी तरह देखूँ; पर सामने देखनेको कुछ था ही नहीं। फिर ऐसा लगा कि शायद अच्छी तरह कान लगाकर सुननेसे उनकी बातें भी साफ-साफ सुनाई देंगी, पर एकाग्रचित्तसे कान

लगाकर सुननेपर भी, सिर्फ जंगली झींगुरोंकी झनकार ही सुनाई दी। मालूम होने लगा कि ढाई सौ वर्ष पहलेकी काली यवनिका ठीक मेरे सामने लटक रही है। मैंने डरते-डरते उसका जरा-सा एक कोना उठाकर भीतर देखा। शायद वहाँ बड़ी-भारी मजलिस लगी हुई थी। पर गाढ़े अन्धकारमें कुछ दिखाई ही नहीं दिया।

इतनेमें अचानक उमसको तोड़ती हुई खूब तेजीसे सनसनाकर हवा चलने लगी। सुस्ताका ठहरा हुआ पानी देखते-देखते अप्सराके सिरके घुँघराले बालोंकी तरह कुंचित हो उठा, और संध्याकी छायासे ढकी सारी वनभूमि एक क्षणमें मर्मरध्वनिके साथ सहसा मानो दुःस्वप्नसे जाग उठी। चाहे सच मानिये या सपना, मेरे सामने ढाई सौ वर्ष पहलेके अतीत क्षेत्रसे प्रतिफलित होकर जो एक अदृश्य मरीचिका उतर आई थी, वह एक क्षणमें न-जाने कहाँ विलीन हो गई। जो मायाविनी तरुणियाँ मेरे बिलकुल नजदीकसे, बिना-देहके तेज कदमोंसे, बिना-आहटके ऊँचे कलहास्यके साथ दौड़तीं-फुदकतीं हुईं सुस्ता नदीके पानीमें कूद पड़ी थीं, वे फिर पानीसे उठकर अपने-अपने भीगे आँचलोंको निचोड़ती हुई मेरे पाससे वापस नहीं गईं। हवा जिस तरह गन्धको उड़ा ले जाती है, ठीक उसी तरह वसन्तके एक निःश्वासमें वे भी उड़कर न-जाने कहाँ चली गईं!

तब, मुझे बड़ी दहशत मालूम देने लगी कि कहीं अकेला पाकर अचानक मेरे सिरपर कवितादेवी तो नहीं सवार हो गई! मैं बेचारा रूईकी चुंगी वसूल करके किसी तरह अपना गुजर

करता हूँ, सत्यानासिनी कहीं मेरा खातमा करने तो नहीं आई ! सोचा कि अच्छी तरह खाना खाना चाहिए, खाली पेटमें ही इस तरहकी बेहूदा बीमारियाँ आ घेरती हैं, जिनका इलाज लुकमान हकीमसे भी न हुआ था। उसी वक्त मैंने अपने बावर्चीको बुलाकर उसे खूब घी और मसाले-सुगन्धियाँ मिलाकर मुगलई खाना बनानेका हुक्म दिया।

दूसरे दिन सवेरे, कलकी सारी बातें बिलकुल मजाक-सी मालूम होने लगीं। खा-पीकर मैं बड़ी खुशतबीयतसे साहबोंकी तरह हैट-कोट पहनकर अपने हाथसे टमटम हाँकता हुआ अपने कामपर चला गया। उस दिन मुझे तिमाही रिपोर्ट लिखनी थी, इसलिए देरसे घर लौटनेकी बात थी। मगर, शाम होते-न-होते कोई मुझे मकानकी ओर खींचने लगा। कौन खींचने लगा, पता नहीं; पर ऐसा लगने लगा कि 'अब देर करना ठीक नहीं।' भीतरसे मन कहने लगा कि 'सब बैठी होंगी !' रिपोर्ट अधूरी छोड़कर मैंने हैट उठाया और उसी वक्त गोधूलि-लग्नकी धूसर-तरु-छायासे ढके-हुए सुनसान मार्गको अपने टमटम-रथके पहियोंके शब्दसे चकित करता हुआ अपने उसी अन्धकारमय शैलान्तवर्ती निस्तब्ध विशाल प्रासादकी ओर चल दिया।

सीढ़ियोंके ऊपरका सामनेवाला दीवानखाना काफी बड़ा था। उसमें काफी ऊँचे और बड़े-बड़े खम्भोंकी तीन कतारें थीं और उनपर थी मेहराबदार बड़ी-भारी छत, जिसके नीचेकी चित्रकारी, तरह-तरहके प्राकृतिक दृश्य और तसवीरें देखते ही बनती थीं। वह विशाल कमरा अपनी गम्भीर शून्यतासे

दिन रात भाँय-भाँय किया करता था। उस दिन, संध्याका प्रारम्भ होनेपर भी, बत्ती नहीं जलाई गई थी। दरवाजा ठेलकर ज्यों ही मैं उस कमरेमें घुसा, त्यों ही ऐसा लगा कि वहाँ यकायक बड़ी-भारी भगदड़-सी मच गई; मालूम हुआ, जैसे सभा भंग करके चारों तरफके दरवाजों और खिड़कियोंसे, जहाँ जिसको राह मिली, सब भाग खड़ी हुई। दूसरे ही क्षण फिर वही सूनाका सूना! मैं कहीं किसीको न देखकर दंग रह गया। मेरा सारा शरीर एक प्रकारके आवेशसे रोमांचित हो उठा। बहुत दिनोंके पुराने बचे-खुचे तेल-फुलेल और अतरोंकी मन्द-मन्द सुगन्धि मेरी नाकमें घुसने लगी। मैं उस दीप हीन जल-हीन विशाल प्रासादके पुराने सफेद पत्थरके बने खम्भोंके बीच खड़ा-खड़ा सुन रहा था, झरझर शब्द करता हुआ फव्वारेका पानी सफेद संगमरमरपर पड़ रहा है; और सितारोंसे क्या सुर निकल रहा था, कुछ समझ न सका। कहीं सोनेके गहनोंकी झनकार, कहीं जवाहरातके जेवरोंकी चमक और कहीं नूपुरोंकी छमछम; कभी शाही घड़ियालका प्रहर-सूचक नाद, बहुत दूरपर नौबतकी मीठी तान, हवासे झूमते हुए स्फटिकके बड़े-बड़े झाड़ोंके लटकनोंकी टुनटुन-ध्वनि, बाहरके बरामदोंसे बुलबुलोंका गीत, बगीचेसे पालतू सारसोंके बोल, सबने मिलकर मानो मेरे चारों तरफ किसी प्रेतलोककी कोई जबरदस्त रागिनी छेड़ दी।

मेरे ऊपर एक तरहकी मोहमाया-सी छा गई। मालूम होने लगा कि संसारमें यह अदृश्य अगम्य अवास्तव घटना ही एकमात्र

सत्य है ; बाकी सब-कुछ मिथ्या मरीचिका। मैं अपनेको बिलकुल भूल गया ; मुझे इस बातका कोई होश ही नहीं रहा कि मैं अमुकका लड़का हूँ और मेरा अमुक नाम है, साढ़े चार सौ रुपया तनखा पानेवाला चुंगीका दरोगा हूं और कोट-पैन्ट पहनकर टमटमपर सवार होकर रोज दफ्तर जाया करता हूँ। सच तो यह है कि ये सब छोटी-छोटी बातें मेरे लिए महज मजाक, बिलकुल झूठी और बे-सिर-पैरकी मालूम होने लगीं। सब रंग-ढंग देखकर अन्तमें मैं उस विशाल निस्तब्ध अन्धकार-पूर्ण सभा-भवनमें खड़ा-खड़ा जोरसे ठहाका मारकर हँस पड़ा।

इतनेमें मेरा मुसलमान चपरासी जलता-हुआ केरोसिनका लैम्प हाथमें लिये घरमें घुसा। उसने मुझे पागल समझा या क्या, मैं नहीं कह सकता। पर उसी क्षण मुझे याद आया कि मैं स्वर्गीय अमुकचन्द्रका बड़ा लड़का अमुकनाथ हूं ; और साथ ही यह भी सोचने लगा कि संसारके भीतर या बाहर कहीं भी अमूर्त फव्वारा हमेशा झरता है या नहीं और अदृश्य उंगलियोंके आघातसे किसी मायामयी वीणासे अनन्त रागिनी ध्वनित होती है या नहीं, यह तो हमारे महाकवि और कविवर ही बता सकते हैं ; पर इतना तो बिलकुल सही और सौ-फीसदी सच है कि मैं भड़ौंचकी हाटमें रुईकी चुंगी वसूल करनेवाला रियासतका तनखा पानेवाला नौकर हूँ। और तब मैं फिर अपने पूर्व-क्षणोंकी अद्भुत मोहमायाकी याद करके टेबिलके पास लैम्पके सामने बैठकर अखबार देखता हुआ मजे ले-लेकर हँसने लगा।

अखबार पढ़कर, मुगलई खाना खानेके बाद, मैं कोनेवाले अपने छोटेसे कमरेमें जाकर बत्ती बुझाकर बिस्तरपर पड़ रहा। मेरे सामनेकी खुली हुई खिड़कीसे अन्धकार-पूर्ण जंगलसे घिरे हुए अरावली पहाड़की चोटीके ऊपर एक जोरोंसे जलता हुआ तारा करोड़ों योजन दूर आकाशसे, इस अति-तुच्छ कैम्प-खाटपर पड़े हुए मुझ चुंगी दरोगाकी ओर एकटक देख रहा था ; और मैं उसकी उस उज्ज्वल तीव्र दृष्टिसे आश्चर्य और कौतुक अनुभव करता हुआ कब सो गया, मुझे पता नहीं। कितनी देर तक सोता रहा, सो भी नहीं जानता। यकायक मैं चौंककर जाग पड़ा ; कमरेमें कोई आवाज हुई हो या कोई अचानक घुस आया हो, सो बात नहीं। अन्धकारमय पर्वत-शिखरके ऊपर जो तारा चमक रहा था, वह डूब चुका था। और अँधेरे पाखकी फीकी चाँदनी अनधिकार-प्रवेशके संकोचसे संकुचित होकर मेरी खिड़कीसे भीतर घुस रही थी।

अपने कमरेके भीतर मुझे कोई दिखाई नहीं दिया ; फिर भी मानो मुझे साफ मालूम होने लगा कि न जाने कौन आकर मुझे अपने कोमल करस्पर्शसे धीरे-धीरे हिला रही है। मैं जागकर बैठ गया। देखा कि वह मुंहसे कुछ न कहकर सिर्फ अपनी अँगूठियोंसे चमकती हुई पाँचों उँगलियोंसे इशारा करके मुझे खूब सावधानीसे अपने पीछे-पीछे चले आनेका हुक्म दे रही है।

मैं बहुत ही आहिस्तेसे उठा। हालाँ कि उस सैकड़ों कमरोंवाले, गुरु-गम्भीर शून्यतामय, निद्रित ध्वनि और सजग प्रतिध्वनिसे गूँजते हुए विशाल प्रासादमें मेरे सिवा और कोई

भी नहीं था, फिर भी कदम-कदमपर मुझे ऐसी दहशत होने लगी कि कहीं कोई जाग न जाय। उस महलके अधिकांश कमरे बन्द रहते थे, और उन कमरोंमें मैं कभी गया भी नहीं था।

रातके उस अँधेरेमें हौले-हौले पैर रखता हुआ, अपनी साँसपर पूरा काबू रखकर, मैं उस अदृश्य बुला-लेजानेवालीके पीछे-पीछे कहाँ जा रहा था, आज भी उसे मैं ठीक समझा नहीं सकता। कितने अन्धकार-पूर्ण संकीर्ण मार्ग, कितने लम्बे-चौड़े बरामदे, कितने सुनसान निस्तब्ध दीवानखाने, कितनी छोटी-छोटी बन्द कोठरियाँ पार करता हुआ जाने लगा, उसका कोई ठिकाना नहीं!

अपनी उस अदृश्य दूतीको यद्यपि मैं आँखोंसे नहीं देख रहा था, फिर भी उसकी शकल-सूरत मेरे मनके अगोचर न थी। ईरानी तरुणी थी वह, ढीली आस्तीनोंमें दूधिया संगमरमर-जैसे उसके कठिन-कोमल गोल-मटोल हाथ दिखाई दे रहे थे, माथेपर लाल मखमलकी टोपी थी और उसके नीचे झीने कपड़ेकी एक नकाब थी जो उसके कोमल गोल गुलाबी मुखड़ेपर बड़ी सुहावनी लग रही थी। कमरसे एक रेशमी फेंटा बँधा था और उसमें उरसी थी एक बाँकी छुरी।

मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे 'अलिफ-लैला' की हजार रातोंमें से कोई एक रात आज उपन्यास-लोकसे उड़कर यहाँ आ गई हो। और मैं ऐसा लग रहा था जैसे अन्धकारमय निशीथमें सोते-हुए बगदादके अन्धाकुप सँकड़े रास्तेसे किसी संकटपूर्ण अभिसारके लिए चला जा रहा हूँ!

अन्तमें, मेरी दूती एक गहरे नीले रंगके परदेके सामने जाकर सहसा ठिठककर खड़ी हो गई ; और नीचेकी ओर उंगलीका इशारा करके कुछ दिखाने लगी। नीचे कुछ भी न था, फिर भी मेरे हृदयका खून जमकर बर्फ हो गया। मुझे साफ मालूम होने लगा कि उस परदेके सामने जमीनपर कमखाबकी पोशाक पहने, गोदमें नंगी तलवार लिये, दोनों पैर फैलाये कोई खौफनाक हबशी खोजा बैठा ऊँघ रहा है। दूती निहायत हल्के कदमोंसे बिना आहट किये उसकी टाँगोंको लाँघकर परदेके पास पहुंची ; और धीरेसे उसने उसका एक कोना उठाया।

भीतरका थोड़ा-सा हिस्सा मुझे दिखाई दे गया। देखा कि फर्शपर खास फारसका बना बढ़िया गलीचा बिछा हुआ है। भीतर तख्तके ऊपर कौन बैठा है, साफ नजर नहीं आया, सिर्फ केशरिया रंगका ढीला पायजामा और उसके नीचे जरीदार जूतियों-समेत गोरे-गोरे दो सुन्दर पाँव लाल मखमलके आसनपर लापरवाहीसे पड़े दिखाई दिये। फर्शपर एक बलगसे एक स्फटिककी थालीमें कुछ सेब, नाशपाती, नारंगी और अंगूरोंके गुच्छे सजे हुए थे ; उसके पास ही एक छोटा सा प्याला और सुनहले रंगकी अंगूरी शराबसे भरी हुई काँचकी सुराही किसी आनेवाले मेहमानके लिए इन्तजार कर रही थी। भीतरसे ऐसी एक तरहकी अमीरी ढंगकी महक और उसके साथ बहुत ही उमेदा खुशबूदार धूपका धुआँ चला आ रहा था कि मुझे एक तरहका नशा-सा आ गया।

मैं भी काँपते हुए दिलसे उस खोजेकी टाँगें लाँघकर आगे

बढ़ना ही चाहता था कि वह कमबख्त जाग उठा ; और उसकी गोदमें पड़ी हुई नंगी तलवार झन्न-से संगमरमरके फर्शपर गिर पड़ी।

अचानक एक विकट चीख सुनकर मैं चौंक पड़ा ; आँखें खुलीं, तो देखा कि अपनी उस कैम्प-खाटपर ही मैं पसीनेसे तर-बतर हुआ बैठा हूँ, भोरके उजालेसे कृष्णपक्षका चाँद रात-भर जगे हुए बीमारकी तरह पीला पड़ गया है ; और बाहर वह पागल मेहरअली अपने रोजके दस्तूरके माफिक पौ फाटते ही सुनसान सड़कपर—"दूर रहो, दूर रहो सब ! झूठा है, सब झूठा है !"—चिल्लाता हुआ महलके चारों तरफ दौड़ रहा है।

इस तरह अरबी उपन्यास "अलिफ-लैला" की एक रात देखते-देखते यों ही खतम हो गई ; मगर उम्मीद इतनी थी कि अब भी एक हजार रातें और बाकी हैं।

मेरे दिनके साथ रातका बड़ा-भारी विरोध उठ खड़ा हुआ। दिनमें हारी-थकी देह लेकर अपने कामपर जाता और दिन-भर वहाँ शून्य-स्वप्नमयी मायाविनी रातको कोसता रहता ; और फिर शाम होते ही अपने दिनके कार्य-बद्ध अस्तित्वको अत्यन्त तुच्छ, बिलकुल झूठा और महज मजाक समझने लगता।

शामके बाद, मैं एक अजीब नशेके जालमें अपने-आप फँस कर बुरी तरह उलझ जाता ; और तब मैं अपनेको सैकड़ों वर्ष पहलेके किसी एक अलिखित इतिहासका और-कोई व्यक्ति समझने लगता। फिर विलायती तंग कोट और चुस्त पैन्ट मुझे भद्दा लगने लगता। तब मैं लाल मखमलकी टोपी, ढील

पायजामा, फूलदार कबा और रेशमका लम्बा चोगा पहनकर और रंगीन रेशमी रूमालमें अतर डालकर बड़ी दिलचस्पीके साथ अपनेको तैयार करता; और सिगरेट फेंककर गुलाबजलसे भरा लम्बी नलीदार बड़ा-सा पेचवान लेकर ऊँचे गद्दीदार मसनदपर ऐसे बैठ जाता जैसे कोई प्रेमी रातको किसी अपूर्व प्रिय-सम्मिलनके लिए परम आग्रहके साथ तैयार बैठा हो।

उसके बाद, अन्धकार जितना ही घना होता जाता, उतनी ही, न-जाने कैसी-कैसी अद्भुत घटनाएँ होती रहतीं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। ठीक ऐसा लगने लगता कि जैसे किसी रहस्यपूर्ण विचित्र कहानीके कुछ फटे-हुए पन्ने वसन्तकी आकस्मिक हवासे इस विशाल प्रासादके चित्र-विचित्र कमरोंमें उड़े-उड़े फिरते हों; कुछ पन्नों तक सिलसिला मिल जाता, फिर उसके बादका हिस्सा ढूँढ़े नहीं मिलता। मैं भी उन उड़ते हुए पन्नोंका पीछा करता-हुआ सारी रात कमरे-कमरे और कोठरी-कोठरीमें मारा-मारा फिरता रहता।

उन अजीब अजीब सपनोंके एक-एक टुकड़ेमें कभी हिनाकी खुशबू, कभी सितारकी झंकार और कभी खुशबूदार पानीकी ठंडी-ठंडी बौछारोंके साथ आती हुई हवाकी हिलोरोंमें अपनी मानस-नायिकाको बिजलीकी लकीरकी तरह चमकती हुई देख लिया करता। मेरी वह मानस-अभिसारिका केशरिया रंगका पायजामा पहने, अपने दूधिया-गुलाबी कोमल पैरोंमें जरीदार नुकीली जूतियाँ डाले और पीनोन्नत पयोधरोंपर जरीकी बेल-बूटेदार कंचुकी कसे, माथेपर सामनेकी ओर सुनहरी झालरदार

सिन्दूरी रंगकी शानदार टोपी लगाये घने अन्धकारमें बिजलीकी तरह क्षणमें चमककर क्षणमें छिप जाती।

उसने मुझे पागल कर दिया था। मैं उसके इन्तजारमें अपनी उस मानस-प्रेयसीके सपनोंका जटिल मार्ग तय करता हुआ मायापुरीमें जाकर वहाँकी गली-गलीमें कोठरी-कोठरीमें इधरसे उधर भटकता फिरता।

किसी-किसी दिन शामको, जब मैं बड़े आईनेके दोनों ओर दो बत्तियाँ जलाकर बड़ी दिलचस्पीके साथ अपनेको शाहज़ादेकी पोशाकसे सजानेमें मशगूल रहता, तो सहसा देखता कि आईनेमें मेरे प्रतिबिम्बके बहुत ही पास, क्षण-भरके लिए, उस तरुणी ईरानीकी छाया आ खड़ी हुई है। और उसी क्षण वह अपनी सुराहीदार गरदन हिलाकर, अपनी बड़ी-बड़ी भौंरे-सी काली आँखोंकी पुतलियोंसे अपने हृदयकी गहरी प्रीति और जबरदस्त चाहका इशारा करती हुई, दिलका दर्द आँखोंके आईनेमें लाकर कटाक्ष करती और नाचती-थिरकती-इठलाती हुई, अपनी यौवन-पुष्पित देह-लताको तेजीसे ऊपरकी ओर घुमाती हुई, क्षणमें वेदना वासना और विभ्रमके हास्य-कटाक्ष करती और आभूषण-ज्योतिकी चिनगारियाँ बरसाती हुई दर्पणकी दर्पण ही में विलीन हो जाती। फिर गिरि-काननकी सम्पूर्ण सुगन्धको लूटता हुआ पवनका एक निरंकुश उच्छ्वास आता और मेरी दोनों बत्तियोंको बुझाकर चला जाता। मैं भी अपना साज-शृङ्गार छोड़-छाड़कर एक कोनेमें पड़ी हुई अपनी खाटपर जाकर पड़ जाता। बिस्तरपर पड़ते ही मेरा सम्पूर्ण तन-मन पुलकित हो उठता, और मैं आँखें

मींचकर सोनेकी कोशिश करता। उस समय मेरे चारों तरफ वह पवनोच्छ्वास, अरावली पहाड़ियोंके जंगली फूलोंकी वह खुशबू मानो किसी अतृप्त प्रेमके बहुत-बहुत प्यार, हजारों-लाखों चुम्बन और कोमल करस्पर्शसे उस सुनसान अन्धकारको भर देता और वहीं-का-वहीं चक्कर काटता रहता। अपने कानोंके आस-पास मैं मनको लुभानेवाली सुन्दरी तरुणियोंकी आपसकी बातचीत सुनता रहता, मेरे माथेपर उनकी सुगन्धित साँस आ-आकर लगती, बार-बार हलकी खुशबू लिये हुए बहुत ही बारीक और मुलायम दुपट्टा आ-आकर मेरे गालोंपर पड़ता, और उसकी सुरसुराहटसे मैं बेचैन हो-हो उठता। धीरे-धीरे वह मोहिनी नागिन अपने मादक वेष्टनसे मेरे सारे अंगोंको कसके बाँध डालती; और मैं मदहोश हो गहरी नींदमें खर्राटे लेने लगता।

एक दिन, मैंने तय किया कि शाम होनेके पहले ही घोड़ेपर सवार होकर हवाखोरीके लिए कहीं निकल जाऊं; पर पीछेसे न-मालूम कौन मुझे मना करने लगा, मगर मैंने उसकी एक न सुनी। एक खूंटीपर मेरा हैट और कोट टँगा था; मैंने उन्हें उठाकर ज्यों ही पहनना शुरू किया, त्यों ही सुस्ता-नदीकी रेती और अरावली-पहाड़ियोंकी सूखी पत्तियोंका झंडा फहराता हुआ एक जोरका बवंडर अचानक आ धमका और मेरे उस कोट-पैन्ट हैटको छीनकर न-जाने कहाँ उड़ा ले गया; साथ ही एक बहुत ही प्यारी और मीठी जोरकी हँसी उस तूफानके साथ घूमती हुई, दिलचस्पी और कौतुकके हरएक परदेपर उँगलियाँ रखती

हुई, ऊँचेसे ऊँचे सप्तकपर चढ़ती हुई आसमानको आखिरी सतहमें जाकर सूरजकी रोशनीके साथ विलीन हो गई।

उस दिन फिर मैं घोड़ेपर घूमने न जा सका; और उसके दूसरे दिनसे तो फिर मैंने साहबी हैट-कोट पहनना ही हमेशाके लिए छोड़ दिया।

उस दिन फिर आधी रातको अचानक मैं सोतेसे उठकर बैठ गया। सुना, मानो कोई छाती कूट-कूटकर गला फाड़फाड़के रो रही है, मानो ठीक मेरी खाटके नीचे, जमीनके भीतर उस विशाल प्रासादकी पत्थरकी नींवके नीचे, किसी नमी-शुदा अँधेरी कब्रके भीतरसे रो-रोकर कह रही हो—"तुम मुझे इस कठोर माया, इस गहरी नींद और फजूलके इन सपनोंके सारे दरवाजे तोड़कर अपने घोड़ेपर चढ़ाकर, अपनी छातीसे चिपटाकर, जंगलके भीतरसे, पहाड़ियोंके ऊपरसे, नदी पार होकर, सूरजकी रोशनीसे रौशन अपनी खुली हुई आजाद दुनियामें ले चलो। मुझे छुटकारा दे दो, मुझे आजाद कर दो।"

"मैं कौन हूं, मेरी हस्ती ही क्या है! मैं कैसे तुम्हें आजाद कर दूँ, मैं कैसे तुम्हारा उद्धार करूँ! मैं इस घूमते और बदलते हुए सपनोंके तूफानी बहावमें डूबती-हुई मुहब्बत और चाहसे भरी-हुई किस हवस-नाक नाजनीको खींचकर किनारे लगाऊँ, किस कामना-सुन्दरीका उद्धार करूँ? तुम कब थीं, कहाँ थीं, हे दिव्यरूपिणी! तुम किस शीतल झरनेके तटपर, किस खर्जूर-कुंजकी छायामें किस गृह-हीना मरुवासिनीकी कोखमें पैदा हुई थीं? तुम्हें कौन बद्दू डाकू, वनलतासे

फूलकी कलीकी तरह माकी गोदसे तोड़कर, तूफानी चाल चलनेवाले अरबी घोड़ेपर बिठाकर, जलते हुए रेगिस्तानको पार करके, किस शाही शहरके गुलामोंके बाजारमें बेचनेके लिए ले गया था? वहाँ किस बादशाहका कौनसा खैरख्वाह खिदमतगार तुम्हारी इस फूलकी तरह तुरत-खिली और शर्मसे काँपती हुई जवानीकी बहारको देखकर, सोनेके सिक्कोंके बदले तुम्हें खरीदकर, समुद्र पार होकर, सोनेकी पालकीमें बिठाकर तुम्हें अपने शाहके महलमें भेंट चढ़ा गया था? वहाँका कैसा इतिहास था वह! वहाँकी सारंगीकी धुन, नूपुरोंकी झंकार और छलकती हुई सुनहली शीराजी शराबके बीच चमचमाती हुई कटारोंकी झलक, विषकी ज्वाला, कटाक्षोंकी चोट, कैसी थी वह! ओफ, कितना फैला हुआ, कितना दौलत-शुदा और कैसा अनन्त कारागार था वह! भीतर दोनों ओर दो दासियाँ अपनी चूड़ियोंमें हीरेके नगोंको चमकाती हुई चँवर डुला रही हैं; और शाहंशाह बादशाह उनके गोरे पाँवोंपर, मानिक-मोतियोंसे जड़ी हुई जूतियोंके पास, लोट रहे हैं! और बाहर, बाहरके दरवाजेपर जमदूत-जैसे हबशी, देवदूत जैसी पोशाक पहने, हाथमें नंगी तलवार लिये खड़े हैं! उसके बाद उस खूनखराबीसे नापाक, डाह और बदला लेनेकी हवसमें पागल और साजिशोंकी आगसे जलती हुई, ऐश-आराम और दौलतके तूफानी बहावमें बहती हुई, रेगिस्तानकी फूलकी कली तुम, यहाँ कहाँ, किस मौतकी दुनियामें आ फँसी! हे दिव्यरूपिणी, यहाँ कहाँ किस निष्ठुर निर्दय कठोर महिमा-तटपर

बलि चढ़ा दी गई हो तुम? हे दिव्यरूपिणी, कब थीं, कहाँ थीं, कहाँ हो तुम? मैं कैसे तुम्हारा उद्धार करूँ?"

इतनेमें अचानक उस पागल मेहर अलीकी चीख मेरे कानोंमें पड़ी—"दूर रहो, दूर रहो सब! झूठा है, सब झूठा है!"

आँखें खोलकर देखा, सवेरा हो गया है। चपरासीने डाक लाकर मेरे हाथमें दी; और बावरची आकर पूछने लगा—"आज क्या खाना बनेगा?"

मैंने कहा—"बस, अब इस मकानमें नहीं रहना है।"

उसी दिन मेरा सब असबाब उठकर दफ्तर पहुंच गया। दफ्तरका बुड्ढा क्लार्क करीम खाँ मुझे देखकर कुछ मुसकराया। मैं उसकी इस मुसकराहटसे नाराज-सा हुआ; पर बगैर कुछ जवाब दिये अपना काम करने लगा।

ज्यों-ज्यों शाम करीब आने लगी, त्यों-त्यों मैं अनमना-सा होने लगा; ऐसा लगने लगा कि जैसे अभी तुरत कहीं जाना है। रूईके हिसाब जाँचनेका काम मुझे बिलकुल गैर-जरूरी और वाहियात मालूम हुआ; निजामकी निजामत तक मुझे कोई खास जरूरी चीज नहीं मालूम हुई। चारों तरफ जो कुछ मौजूद है, जो कुछ चल-फिर रहा है, मेहनत-मजूरी कर रहा है, खा-पी रहा है, वह सब-कुछ मुझे बहुत ही वाहियात, बिलकुल नाचीज, बेमतलबका और राहका मुंहताज भिखारी-सा मालूम होने लगा।

मैं कलम फेंककर, भारी-भरकम खाते-बही बन्द करके,

फौरन उठ खड़ा हुआ; और अपनी टमटमपर बैठकर चल दिया। देखा कि टमटम ऐन गोधूलिके लग्नपर खुद-बखुद उस सफेद संगमरमरके बने शाही महलके सामने जा खड़ी हुई। और मैं चटसे उतरकर जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ तै करता हुआ बड़ी तेजीसे उसके अन्दर दाखिल हुआ।

आज सब-कुछ निस्तब्ध खामोश और सुनसान है। ऐसा लगा जैसे महलकी सबकी सब अँधेरी कोठरियाँ मानो मुझसे सख्त नाराज होकर मुंह फुलाये पड़ी हों। अफसोस रंज और पछतावेसे मेरा कलेजा ऊपरको आने लगा। लेकिन किससे कहूं, किससे हाथ जोड़कर माफी माँगूं, कोई भी तो दीखता नहीं! मैं अपना सूना और रोता-हुआ दिल लेकर अँधेरी कोठरियोंमें भटकने लगा। जब मैं बिलकुल थककर चूर हो गया तब भीतरसे मेरी तबीयत चाहने लगी कि एक सितार हाथमें लेकर किसीको सुनानेके लिए कुछ गाऊँ; और कहूं कि "हे दीपशिखा, ओ मेरी शमा, जो पतंगा तुझे छोड़कर भाग जानेकी कोशिश कर रहा था, वह आज फिर अपनी खुशीसे जल-मरने आया है। अबकी बार तू उसे माफ कर दे, उसके दोनों पंख जला डाल, मेरी तबीयत और मुहब्बतके सिवा और-सब-कुछ मेरा जलाकर खाक कर दे; तू रह जा और मैं रह जाऊँ, बस, और कुछ नहीं।

इतनेमें यकायक मेरे माथेपर आँसूकी दो गिरीं। उस दिन अरावली पहाड़की चोटीपर घनघोर बादल मँडरा रहे थे। अन्धकारमय जंगल और स्वच्छतोयाका स्याही-सा स्याह पानी

किसी खौफनाक मेहमानकी इन्तजारीमें स्थिर बैठा था। इतनेमें सहसा जल-स्थल आकाश सब एकसाथ चौंक पड़ा; और अकस्मात् एक तूफान अपने बिजलीके दाँत कड़कड़ाता हुआ कुदरतकी मजबूत जंजीरको तोड़कर-भागे-हुए मदोन्मत्त पागल हाथीकी तरह मार्ग-हीन सुदूर वनमें से चीखता-चिंघारता हुआ दौड़ा चला आया। महलके बड़े-बड़े कमरे अपने सारे-के-सारे दरवाजोंके सिर धुन-धुनकर, तीव्र वेदनासे पछाड़ खा-खाकर, फूट-फूटकर रोने लगे।

आज नौकर-चाकर सब दफ्तरवाले मकानमें ही थे। महलमें बत्ती जलानेवाला कोई न था। और उस बादलोंसे घिरी हुई अमावसकी रातमें, महलके भीतर उस कसौटी-से काले अँधेरेमें, मैं बिलकुल साफ-साफ देखने करने लगा कि मेरी वह दिलरुबा, वही ईरानी नाजनी पलंगके नीचे गलीचेपर औंधी पड़ी-हुई अपनी दोनों मुट्ठियाँ बाँध-बाँधकर अपने बिखरे हुए रूखे बालोंको नोंच-नोंचकर फेंक रही है, उसके गोरे मुलायम माथेसे ताजा गरम खून फूट-फूटकर बह रहा है, कभी वह जोरसे 'हा: हा: हा:' करके सूखी हँसी हँस पड़ती, कभी फूट-फूटकर रोने लगती, कभी दोनों हाथोंसे चोलीके दामन तोड़कर, उसे फाड़-फाड़कर उघड़ी हुई छाती पीटने लगती; और खुली हुई खिड़कियोंसे गरजती हुई तूफानी हवा और मूसलाधार वर्षाकी बौछार आ-आकर उसके गमसे तपे बदनपर ऐसा छिड़काव करने लगती जैसे बगैर औलादकी किसी विधवा किन्तु तरुण रानीको सिंहासनपर बिठानेके लिए अभिषिक्त कर रही हो।

उस दिन, तमाम रात न तो आँधी थमी और न उसका रोना ही बन्द हुआ। मैं बेमतलबके गम और पछतावेसे गमगीन और बेचैन होकर अँधेरी कोठरियोंमें भटकता फिरा। कहीं किसीका पता न चला, तसल्ली दूँ तो किसे दूँ ? यह चोट खाया हुआ गम और नाराजगी है किसकी ? यह तड़पता हुआ बेचैन पछतावा, यह अन्दरूनी गहरे गमका धुआँ उठ कहाँसे रहा है ? मैं कुछ समझ न सका।

इतनेमें पागल मेहर अली न-जाने कहाँसे अचानक चीख उठा—"दूर रहो, दूर रहो सब ! झूठा है, झूठा है सब !"

देखा कि सवेरा हो गया है ; और मेहर अली ऐसे जबदस्त तूफान और मूसलधार मेहमें भी अपने कायदेको बगैर तोड़े उस प्यासे-पत्थरके महलके चारों तरफ घूमता हुआ रोजकी तरह चीखता हुआ दौड़ रहा है। यकायक खयाल आया कि शायद यह मेहर अली भी, मेरी ही तरह, किसी समय कमबख्तीका मारा इस महलमें आ ठहरा होगा, और अब पागल होकर बाहर निकल भागनेपर भी, पत्थरके बने इस अजगरके तेज साँसके खिन्चावसे खिंच-खिंचकर रोज सवेरे इसके चारों तरफ चक्कर काटा करता है ; न भीतर आकर अपना खातमा ही कर पाता है और न बाहर रहकर जिन्दादिली से जिन्दगी ही बिता सकता है।

मैं उसी वक्त, उसी आँधी-मेहमें, दौड़ा-दौड़ा उस पागलके पास पहुंचा ; और उससे पूछने लगा—"भाई मेहर अली, क्या झूठा है, मुझे बताओ न ?"

मेरी बातका कोई जवाब न देकर, जोरका एक धक्का मारके मुझे गिराकर, अजगरके मुँहके कौरकी तरह खिंचता और चक्कर काटता हुआ, मोहाविष्ट पक्षीकी तरह चीखता हुआ वह उस प्यासे पत्थरके महलके चारों तरफ लगातार घूमता ही रहा। बीच-बीचमें अपनेको होशियार और काबूमें रखनेके लिए बार-बार वह सिर्फ एक ही बात चिल्ला-चिल्लाकर कहता रहा—"दूर रहो, दूर रहो सब! झूठा है, सब झूठा है!"

मैं उसी वक्त, उसी हालतमें, उस आँधी-मेहमें पागलकी तरह घबराया हुआ दफ्तर पहुंचा; और करीम खाँको पास बुलाकर मैंने उससे धीरेसे पूछा—"इसके मानी क्या हैं, मुझे साफ-साफ बताओ?"

बुड्ढेने जो कुछ कहा, उसका मतलब सिर्फ इतना ही था कि किसी जमानेमें उस शाही महलमें असंख्य वासनाएँ, जवानीकी उमंगोंसे भरी हुई बेचारी बेशुमार बाँदियोंके दिलोंकी बेकरार ख्वाहिशें और मदोन्मत्त भोग-सम्भोगकी झुलसा देनेवाली लपटें हरदम उमड़ती-घुमड़ती और लहरें लिया करती थीं; बेकरार दिलोंकी उन सब चिनगारियोंसे, फूलकी कली-सी उन सब बेबस जिन्दगियोंकी बददुआसे, पत्थरके बने इस शाही महलका हरएक पत्थर अभी तक भूखा और प्यासा तड़प रहा है; और इसीलिए अपने आस-पास किसी जिन्दा आदमीको पाते ही उसे खूनके प्यासे पिशाचकी तरह खा डालना चाहता है; उसका खून पीकर अपनी प्यास बुझाना चाहता है। आज तक जो-कोई उस महलमें तीन रात रहे हैं, उनमेंसे

सिर्फ एक मेहरअली ही पागल होकर बाहर निकल पाया है; वरना और-कोई भी इसके ग्राससे बचा नहीं।

मैंने पूछा—"मेरे उद्धारकी भी कोई तरकीब बता सकते हो ?"

बुड्ढेने कहा—"सिर्फ एक ही तरकीब है, और वह बहुत ही मुश्किल है। मैं तुम्हें बताये देता हूँ; लेकिन उससे पहले उस गुलबागकी एक जरखरीद ईरानी बाँदीका किस्सा बताना बहुत जरूरी है। वैसा ताज्जुबका और वैसा दिल दहलानेवाला हादसा शायद ही दुनियामें पहले कभी किसीने सुना होगा।"

इतनेमें स्टेशनके कुलियोंने आकर खबर दी—"गाड़ी आ रही है, हुजूर!" इतनी जल्दी ? झटपट बिस्तर बाँधते-बँधवाते गाड़ी आ पहुंची। उस गाड़ीके फर्स्टक्लास कम्पार्टमेन्टसे तुरत ही सोतेसे उठा हुआ एक अंगरेज खिड़कीमेंसे गरदन निकालकर स्टेशनका नाम पढ़नेकी कोशिश कर रहा था; वह हमारे उन बाबू साहबको देखते ही "हैलो!" कहकर चिल्ला उठा; और हाथके इशारेसे उसने उन्हें अपने डब्बेमें बुला लिया। हम लोग एक सेकेण्ड-क्लास डब्बेमें लद गये। फिर उन बाबू साहबका आज तक कुछ पता ही न लगा; और अफसोस कि ऐसे दिलचस्प किस्सेका आखिरी हिस्सा हम सुन ही न पाये। मैंने अपने साथी मित्रसे कहा—"देखा हजरत, हम दोनोंको बेवकूफ बनाकर कैसा चकमा दे गया पट्ठा! मैं दावेके साथ कह सकता हूं कि शुरूसे लेकर आखिर तक सारा किस्सा बेबुनियाद और मन-गढ़न्त है।"

इसपर हम दोनोंमें इतनी जबरदस्त बहस हुई और उसका दोनों दिलोंपर ऐसा असड़ पड़ा कि हम दोनोंमें जिन्दगी-भरके लिए बोलचाल ही बन्द हो गई।

दृष्टिदान

सुना है कि आजकल बहुत-सी भारतीय लड़कियोंको अपनी कोशिशसे अपने लिए पति चुनना और संग्रह करना पड़ता है। मैंने भी ऐसा ही किया है, लेकिन देवताकी मददसे। मैं बचपन ही से बहुतसे व्रत-उपवास और काफी शिव-पूजा करती आई हूँ।

मैं पूरे आठ बरसकी भी न हो पाई थी कि मेरा ब्याह हो गया। लेकिन शायद पहले-जन्मके पापके कारण मैं अपने ऐसे अच्छे पतिको पाकर भी पूरा न पा सकी। माता त्रिनयनीने मेरी दोनों आँखें ले लीं। उन्होंने मुझे जीवनके अन्तिम क्षण तक पतिको देखते रहनेका सुख नहीं दिया।

बचपनसे ही मेरी अग्नि-परीक्षा शुरू हुई। चौदहवाँ साल पूरा भी न हो पाया कि मैंने एक मरा-हुआ बच्चा जना; और खुद भी लगभग मौतके पास पहुंच गई। मगर जिन्दगीमें जिसे दुःख भोगने हैं, भला वह मर कैसे सकती है? जो दीआ जलनेके लिए पैदा हुआ है, उसमें तेल कम नहीं होता; वह तो रात-भर जलकर फिर बुझता है।

मरते-मरते बीच तो गई; पर देहकी कमजोरी, मानसिक

दुःख या और-किसी कारणसे हो, मेरी आँखोंमें दर्द शुरू हो गया ; और आँखें खराब होने लगीं।

मेरे पति उन दिनों डाक्टरी पढ़ रहे थे। नई विद्या सीखनेके उत्साहमें इलाज करनेका कोई मौका हाथ लगते ही वे निहायत खुश हो जाते। मेरी आँखें खराब होने लगीं तो उन्होंने खुद ही मेरा इलाज करना शुरू कर दिया।

मेरे बड़े भइया उस साल वकालतका इम्तिहान देनेके लिए लॉ-कालेजमें पढ़ रहे थे। उन्होंने एक दिन आकर मेरे पतिसे कहा—"तुम यह कर क्या रहे हो भाई ? कुमुदको अन्धी ही कर डालोगे क्या ? किसी अच्छे डाक्टरको क्यों नहीं दिखाते ?"

मेरे पतिने कहा—"अच्छा डाक्टर आकर नया इलाज क्या करेगा ? दवा वगैरह तो सब मालूम ही हैं।"

भइयाको कुछ गुस्सा-सा आ गया ; बोले—"तब तो तुममें और तुम्हारे कालेजके प्रिन्सिपलमें कोई फर्क ही नहीं ?"

पतिने कहा—"तुम कानून पढ़ रहे हो, डाक्टरीका तुम क्या जानो ? जब तुम ब्याह कर चुकोगे, तब तुमसे मैं पूछूंगा कि तुम्हारी स्त्रीकी जायदादपर अगर कोई मुकदमा चला बैठे तो तब तुम क्या मेरी सलाहपर चलोगे ?"

मैं मन-ही-मन सोच रही थी कि राजा-राजाओंकी लड़ाईमें बेचारे सिपाहियोंकी शामत है। मेरे पतिके साथ भइयाकी खटपट हो गई ; पर दोनों ओरसे चोट मुझ ही पर पड़ने लगी। मैंने सोचा, मायकेवालोंने जब मुझे दान ही कर दिया है, तब फिर मेरे बारेमें क्या करना चाहिए और क्या नहीं, इन

सब बातोंमें वे क्यों पड़ते हैं ? मेरी बीमारी और तनदुरुस्ती, मेरा सुख-दुःख, सब-कुछ मेरे पतिका ही तो है।

उस दिन मेरे इस मामूली-से आँखके इलाजको लेकर भइयाके साथ मेरे पतिका जरा मनमुटाव-सा हो गया। एक तो वैसे ही मेरी आँखोंसे पानी गिरता था, और अब तो मेरी वह आँसुओंकी धारा और भी बढ़ गई। इसका असली सबब मेरे पति या भइया दोनोंमेंसे कोई भी न समझ पाये।

मेरे पतिके कॉलेज चले जानेपर, एक दिन शामको अचानक भइया आ गये डाक्टर लेकर। डाक्टरने परीक्षा करके कहा— "सावधानीसे इलाज न हुआ और इसी तरह बदपरहेजी होती रही, तो ताज्जुब नहीं कि आँखोंसे हाथ धोना पड़े।" यह कहकर डाक्टरने दवा लिख दी ; और भइयाने उसी वक्त दवा मँगानेके लिए आदमी भेज दिया।

डाक्टरके चले जानेपर मैंने भइयासे कहा—"भइया, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मेरा जो इलाज हो रहा है उसमें तुम किसी तरहकी रुकावट मत डालो।"

बचपन ही से मैं भइयासे खूब डरा करती थी। उनसे मैं इस तरह मुँह खोलकर बात कर सकी, मेरे लिए यह बड़े ताज्जुबकी बात थी। पर मैंने खूब अच्छी तरह समझ लिया था कि मेरे पतिसे छिपाकर भइया जो मेरा इलाज करा रहे हैं, मेरे लिए वह अशुभके सिवा शुभ हरगिज नहीं हो सकता।

भइयाको भी मेरी ढिठाईसे शायद कुछ अचम्भा हुआ। वे कुछ देर चुप रहकर, खूब सोच-विचारकर, अन्तमें बोले— 'अच्छा,

अब मैं डाक्टर नहीं लाऊँगा; लेकिन जो दवा मँगाई है, उसे ठीक तरीकेसे ले लेना; पीछे देखा जायगा।" दवा आनेपर मुझे उसकी सेवन-विधि समझाकर भइया चले गये। पतिके कालेजसे वापस आनेके पहले ही मैंने दवाकी शीशी, डिबिया, फुरफुती वगैरह सब उठाकर अपने आँगनके कुएमें डाल दी।

भइयाके साथ मानो कुछ विरोध करके ही पतिने दूने उत्साहसे मेरी आँखोंका इलाज करना शुरू किया। वे सुबह-शाम दोनों वक्त दवा बदलने लगे। आँखोंपर पट्टी बाँधी, चश्मा लगाया, बूँद-बूँद दवा डाली, पावडर लगाया, बदबूदार मछलीका तेल पीया, भीतरका सब खाया-पीया और अँतड़ियाँ तक बाहर निकल आने लगीं, उसे भी सहा। पति पूछते—"अब कैसी मालूम होती हैं?" मैं कहती—"अच्छी ही हैं, फायदा है।" मैं भीतरसे भी महसूस करनेकी कोशिश करती कि मुझे आराम हो रहा है। जब ज्यादा पानी गिरने लगता, तो सोचती कि पानीका निकल जाना ही अच्छा है; और जब पानी गिरना बन्द हो जाता, तो सोचती कि अब तो आराम हुआ ही समझो।

मगर कुछ दिन बाद दर्द असह्य हो उठा। आँखोंसे धुँधला दीखने लगा; और सिरमें तो ऐसा दर्द होने लगा कि उससे मैं बहुत दुःखी और परेशान हो गई। मेरे पति भी शायद कुछ शरमिन्दा-से मालूम हुए। और इतने दिन बाद अब वे किस बहानेसे डाक्टर बुलावें, कुछ तय न कर सके।

मैंने उनसे कहा—"भइयाकी बात रखनेके लिए एक बार

डाक्टरको दिखानेमें हर्ज क्या है ? भइया नाराज हो गये हैं, इससे मेरा जी दुख पा रहा है। इलाज तो तुम्हीं करोगे, फिर भी एक डाक्टरका रहना अच्छा है।"

पतिने कहा—"तुम ठीक कह रही हो।" और फिर, उसी दिन वे एक अंगरेज डाक्टरको बुला लाये। दोनोंमें अंगरेजीमें क्या बातचीत हुई, मैं नहीं कह सकती ; लेकिन इतना मैं समझ गई कि साहबने मेरे पतिको कुछ डाटा-फटकार ; और वे सिर झुकाये चुपचाप खड़े रहे।

डाक्टरके चले जानेपर, मैंने अपने पतिका हाथ पकड़कर कहा—"तुम तो न-जाने कहाँसे एक गँवार गोरे गधेको पकड़ लाये, किसी देशी डाक्टरको लाते ! मेरी आँखोंकी बीमारीको गोरा डाक्टर क्या तुमसे भी ज्यादा समझ सकता है ?"

पतिने कुछ संकोचके साथ ही कहा—"आँखोंमें नश्तर लगवाना पड़ेगा।"

मैंने जरा गुस्सा लाकर कहा—"नश्तर करना होगा, यह तो तुम खुद ही जानते थे ; लेकिन तुमने मुझसे छिपा रखा था। तुम क्या समझते हो कि मैं नश्तरसे डरती हूं ?"

उनका संकोच दूर हो गया ; वे बोले—"आँखोंमें नश्तर लगनेकी बात सुनकर न डरें, मरदोंमें ऐसे बहादुर कितने निकलेंगे ?"

मैंने मजाकमें कहा—"मरदोंकी बहादुरी तो सिर्फ औरतोंके सामने ही है।"

उसी क्षण उनके चेहरेपर म्लान-गंभीरता छा गई ; बोले—"ठीक कह रही हो। मरदोंमें सिर्फ घमंड-ही-घमंड है।"

मैंने उनकी गम्भीरताको फूँकसे उड़ाते हुए कहा—"घमंडमें भी तो तुमलोग औरतोंसे बाजी नहीं मार सकते। उसमें भी हमारी ही जीत होती है।"

इसी बीचमें भइया भी आये। मैंने उन्हें एकान्तमें ले जाकर कहा—"भइया, तुम्हारे उस डाक्टरकी दवासे अब तक मेरी आँखें कुछ-कुछ अच्छी हो रही थीं; पर एक दिन भूलसे पीनेकी दवा आँखोंमें डालने और लगानेकी दवा पी जानेसे आँखोंकी यह हालत हो गई कि डाक्टर कहते हैं, आँखोंमें नश्तर लगवाना पड़ेगा।"

भइयाने कहा - "मैं तो समझा था कि तेरे पतिका ही इलाज चल रहा है। इसीसे मैं गुस्सेमें इतने दिनोंसे आया नहीं।"

मैंने कहा—"नहीं तो, मैं छिपे-छिपे उसी डाक्टरकी दवा ले रही थी। कहीं वे नाराज न जायँ, इस डरसे उनसे कहा नहीं मैंने।"

'स्त्री' का जन्म लेकर इतना झूठ बोलना पड़ता है, जिसकी हद नहीं। भइयाका मन भी नहीं दुखा सकती, और पतिके यशको भी ज्यों-का-त्यों रखना मेरे लिए लाजमी है। मा होकर गोदके बच्चेको भी बहलाना पड़ता है, और स्त्री होकर बच्चेके बापको भी खुश रखना पड़ता है। उफ्, स्त्रियोंके लिए इतने छल छंदकी जरूरत होती है!

इस छल-छंदका नतीजा यह हुआ कि अन्धी होनेके पहले मैं अपने भइया और पतिका मिलन देख सकी। भइयाने सोचा कि छिपे-छिपे इलाज करनेसे यह गड़बड़ी हुई; और

पतिने सोचा कि शुरूमें ही अगर वे मेरे भाईकी बात मान लेते तो ऐसा होता ही क्यों ? यह सोचकर दोनों अनुतप्त हृदय भीतर-ही-भीतर क्षमाप्रार्थी-से होकर परस्पर एक दूसरेके अत्यन्त निकटवर्ती हो गये। मेरे पति भइयाकी सलाह लेने लगे ; और भइया भी बड़े विनयके साथ सब विषयोंमें मेरे पतिकी रायपर ही भरोसा करने लगे।

अन्तमें दोनोंकी सलाहसे एक दिन एक अंगरेज डाक्टरने आकर मेरी बाईं आँखमें नश्तर लगाया। कमजोर आँख उस नश्तरकी चोटको झेल न सकी ; उसकी रही-सही क्षीण ज्योति भी सहसा जाती रही। उसके बाद बची-हुई दाहनी आँख भी धीरे-धीरे अन्धकारसे ढक गई। बचपनमें ब्याहके दिन 'शुभदृष्टि' के समय जो चन्दन-चर्चित तरुण मूर्ति मेरी आखोंके सामने पहले-पहल प्रकट हुई थी, मेरे लिए उसपर हमेशाके लिए काला परदा-सा पड़ गया।

एक दिन प्राणनाथने मेरे पलंगके पास बैठकर कहा—"अब मैं तुम्हारे सामने अपनी झूठी बड़ाई न करूंगा ; तुम्हारी आँखें मैंने ही ले लीं।"

मालूम हुआ, उनके कंठमें आँसू भर आये हैं। मैंने दोनों हाथोंसे उनका दाहना हाथ मसककर कहा—"अच्छा किया, तुम्हारी चीज तुमने ले ली। सोचो तो जरा, अगर किसी डाक्टरके इलाजसे मेरी आँखें जाती रहतीं, तो उससे मुझे क्या तसल्ली मिलती ? होनहार जब मिटती ही नहीं, तो आँखें तो मेरी कोई बचा ही नहीं सकता था ; वे आँखें तुम्हारे हाथसे

गई, मेरे अन्वेषनका सबसे बड़ा सुख तो यही है। जब पूजाके पुष्प घट गये थे, तो खुद रामचन्द्र अपने देवताको अपनी आँखें उपाड़कर चढ़ानेको तैयार हो गये थे। मैंने अपने देवताको अपनी दृष्टि दी है, इससे बढ़कर सौभाग्य मेरे लिए और क्या हो सकता है? तुम्हें अपनी आँखोंसे जब जो अच्छा लगे, मुझसे कह दिया करना, उसे मैं तुम्हारा आँखों-देखा प्रसाद जानकर मनमें रख लिया करूंगी।" मैं इतनी बातें नहीं कह सकी थी, मुँहसे इस तरहकी बातें शायद कही भी नहीं जा सकतीं। हाँ, सिर्फ इन बातोंको मैं बहुत दिनों तक मनमें विचारती रही हूँ। बीच-बीचमें ऐसी थकावट आती थी कि मेरे उस निष्ठाका तेज भी मन्द पड़ जाता ; मैं अपनेको वंचित, दुःखित और दुर्भाग्य-दग्ध अभागिन समझने लगती। और तब मैं अपने मनसे ये सब बातें कहला लेती। अपनी इस शान्ति और भक्तिकी मददसे मैं अपनेको अपने दुःखसे भी ऊँचा रखनेकी कोशिश करती। उस दिन बातों-ही-बातोंमें और कुछ-कुछ खामोश रहकर शायद अपने मनके भावको मैं उन्हें किसी तरह समझा सकी थी। उन्होंने कहा—"कुमुद, अपनी मूर्खतासे मैं जो-कुछ तुम्हारा नष्ट कर चुका हूँ, उसे अब मैं तुम्हें वापस नहीं दे सकता ; पर जहाँ तक मेरा बस चलेगा, तुम्हारी आँखोंकी कमी दूर करनेके लिए मैं तुम्हारे साथ-साथ रहूँगा।"

मैंने कहा—"यह कोई कामकी बात नहीं हुई, तुम अपनी घर-गिरहस्थीको अन्धोंका अस्पताल बना रखोगे, यह मैं हरगिज न होने दूंगी। तुम्हें दूसरा ब्याह करना ही होगा।"

किस लिए ब्याह करना बहुत जरूरी है, इस बातको विस्तारसे कहनेके पहले ही मेरा गला रुक-सा आया। जरा खाँसकर, जरा सम्हलकर, मैं कुछ कहना ही चाहती थी कि इतनेमें मेरे पति उच्छ्वसित आवेगके साथ बोल उठे—"मैं मूढ़ हूं, अहंकारी हूं, लेकिन दाम्भिक नहीं हूं, कुमू! मैंने अपने हाथसे अन्धा बनाया है तुम्हें, उसपर सिर्फ अन्धी होनेकी वजहसे तुम्हें छोड़कर अगर मैं दूसरा ब्याह करूँ, तो अपने इष्टदेव गोपीनाथकी सौगंद खाकर कहता हूं, मैं ब्रह्म-हत्या और पितृ-हत्याके पापसे पातकी होऊँ।"

इतनी बड़ी सौगंद उन्हें मैं हरगिज न खाने देती; बीच ही में रोक लेती; पर आँसू उस समय छाती फाड़कर, कंठ दबाकर, दोनों आँखोंमें आकर झरना चाहते थे, मैं उन्हें रोकनेमें ही लगी हुई थी, मुँहसे कुछ निकाल ही न सकी। उन्होंने जो-कुछ कहा, उसे सुनकर मैं परम आनन्दके और चरम सुखके उद्वेगसे तकियेमें मुंह छिपाकर रोने लगी। मैं अन्धी हूं, फिर भी वे मुझे नहीं छोड़ेंगे! दुःखीके दुःखकी तरह मुझे अपने हृदयमें छिपा रखेंगे! इतना सुहाग! इतना सौभाग्य मैं नहीं चाहती; पर मन तो स्वार्थी ठहरा।

अन्तमें, आँसुओंकी पहली वर्षा जोरोंसे हो चुकनेके बाद, उनके मुँहको अपनी छातीके पास लाकर मैंने कहा—"ऐसी कड़ी सौगंद क्यों खाई तुमने? हाय-हाय, मैंने क्यों तुम्हें अपने सुखके लिए ब्याह करनेको कहा था? सौतसे मैं अपना मतलब साधती। आँखोंकी कमीसे तुम्हारा जो काम मुझसे न होता, वह काम मैं उससे करा लेना चहाती थी।"

उन्होंने कहा—"काम तो दासी भी कर देती है, कुमू ! मैं क्या अपने कामके सुभीतेके लिए एक दासीके साथ ब्याह करके उसे अपनी इस देवीके साथ एक आसनपर बिठा सकता हूँ !" कहते हुए उन्होंने मेरा मुंह उठाकर मेरे ललाटपर एक चुम्बन रख दिया। उस चुम्बनने मानो मेरा तीसरा नेत्र खोल दिया। मानो उसी क्षण मेरा देवीके रूपमें अभिषेक हो गया। मैंने मन-ही-मन कहा—'यही अच्छा है। जब अन्धी ही हो चुकी हूं, तो बाहरकी इस घर-गिरहस्थीकी गृहिणी ही क्यों बनी रहूं ? अब तो मैं उससे भी ऊपर रहकर, देवी होकर, पतिका मंगल करूंगी। अब भूठ नहीं, छल नहीं ; गृहिणी रमणीकी जितनी भी क्षुद्रताएँ हैं, जितने भी छल-छन्द हैं, सबको दूर करके, भीतरसे बाहरसे बिलकुल पवित्र हो जाना है मुझे।'

उस दिन, दिन-भर अपने ही साथ एक तरहका विरोध चलता रहा। कठिन प्रतिज्ञामें बँधकर मेरे पति हरगिज दूसरा ब्याह न कर सकेंगे, यह आनन्द भीतर-ही-भीतर मानो मेरे हृदयको काटता रहा ; उसे किसी भी तरह छुड़ाकर अलग न कर सकी। आज मेरे अन्दर जिस नई देवीका आविर्भाव हुआ है, उसने कहा—'शायद ऐसा भी दिन आ सकता है कि जब प्रतिज्ञा पालनेकी अपेक्षा ब्याह करनेसे तुम्हारे पतिका ज्यादा मंगल हो सकता है।' पर मेरे अन्दर जो पुरानी नारी थी, उसने कहा—'इससे क्या, जब कि वे प्रण कर चुके हैं, तब तो ब्याह कर ही नहीं सकते।' देवी बोली—'पर इसमें तुम्हारे खुश होनेकी तो कोई वजह नहीं।' मानवीने कहा—'सब

समझती हूँ, पर जब कि वे प्रतिज्ञा कर चुके हैं, तो—' इत्यादि। बार-बार वही एक ही बात! तब फिर देवीने कुछ नहीं कहा, वे चुप बनी रहीं, भौंहें चढ़ा लीं। किसी एक भयंकर आशंकाके अन्धकारसे मेरा सारा अन्तःकरण आच्छन्न हो गया!

मेरे अनुतप्त स्वामी, नौकर-नौकरानियोंसे मेरे काम करनेकी मनाही करके, खुद ही मेरा सब काम करने लगे। जरा-जरासी बातके लिए इस तरह पतिपर निर्भर रहना, पहले तो अच्छा ही लगने लगा। कारण, इसी बहाने उन्हें हर वक्त पास पाती। आँखोंसे मैं उन्हें देख नहीं सकती थी, इसलिए हमेशा उन्हें अपने पास पानेकी हवस बहुत ज्यादा बढ़ गई। पतिके चेहरेका जो हिस्सा मेरी आँखोंको मिला था, उसे अब अन्य इन्द्रियाँ आपसमें बाँटकर अपना हिस्सा बढ़ा लेनेकी कोशिश करने लगीं। अब ऐसा हो गया कि मेरे पति अगर बहुत देर तक बाहर किसी कामसे चले जाते, तो ऐसा मालूम होता कि जैसे मैं बिलकुल शून्यमें हूं; और अपने चारों तरफ टटोलती फिरती हूं, फिर भी मुझे कहीं-भी कुछ मिल नहीं रहा है, जैसे मेरा सब-कुछ खो गया हो। पहले, पति जब कालेज जाते थे तब मैं उनके आनेमें देर होती तो सड़ककी तरफकी खिड़कीको जरा खोलकर उसकी सँधमें से उनकी राह देखा करती थी। जिस दुनियामें वे घूमा-फिरा करते थे, उस दुनियाको मैंने अपनी आँखोंसे अपने साथ बाँध रखा था। पर आज मेरा दृष्टिहीन सारा शरीर उन्हें ढँढ़नेकी कोशिश करता रहता है। उनकी दुनियाके साथ मेरी दुनियाका जो पुल बँधा हुआ था, वह आज टूट गया है। अब, उनके

और मेरे बीच एक गहरी अन्धताकी खाई है; अब मुझे केवल निरुपाय-व्यग्रताके साथ बैठा रहना पड़ता है कि कब वे अपने उस पारसे मेरे इस पारमें आकर मुझसे मिलें। इसीलिए अब, जब वे क्षण-भरके लिए भी मुझे छोड़कर चले जाते हैं, तो मेरा सारा अन्धा शरीर उद्यत होकर उन्हें पकड़ना चाहता है, हाय-हाय करके उन्हें पुकारने लगता है।

लेकिन इतनी आकांक्षा, इतनी चाह, इतना आसरा-भरोसा तो अच्छा नहीं होता। एक तो वैसे ही पतिपर स्त्रीका भार काफी होता है, उसपर अपने अन्धेपनका भारी बोझ उनपर लादना ठीक नहीं। अपने इस विश्वव्याप्त अन्धकारको मैं अकेली ही झेलूँगी, अकेली ही ढोऊँगी। मैंने एकाग्र मनसे यही प्रतिज्ञा की कि अपनी इस अनन्त अन्धताकी रस्सीसे पतिको मैं अपने साथ बाँधकर हरगिज नहीं रखूँगी।

थोड़े ही दिनोंमें केवल शब्द-गन्ध-स्पर्शसे ही मैंने अपना सारा काम करना सीख लिया। यहाँ तक कि बहुतसे घरके काम तो पहलेसे भी ज्यादा निपुणताके साथ करने लगी। और अब तो ऐसा मालूम होने लगा कि दृष्टि हमारे काममें जितनी सहायता पहुंचाती है, उससे कहीं ज्यादा हमें विक्षिप्त कर देती है। जितना देखनेसे भलाई होती है, आँखें उससे बहुत ज्यादा देखा करती हैं। और, आँखें जब पहरा देनेका काम करती हैं, कान तब आलसी हो जाते हैं; जितना उन्हें सुनना चाहिए, उससे वे कम ही सुनते हैं। अब चंचल आँखोंकी गैरहाजिरीमें मेरी और-सब इन्द्रियाँ अपना कर्तव्य शान्तिके साथ पूरा पालन करने लगीं।

अब मैं अपने पतिको अपना कोई भी काम नहीं करने देती ; बल्कि उनका सारा काम फिर मैं पहलेकी तरह ही करने लगी।

स्वामीने मुझसे कहा—"मेरे प्रायश्चित्तसे तुम मुझे वंचित कर रही हो।"

मैंने कहा—"तुम्हारा प्रायश्चित्त कैसा, सो मुझे नहीं मालूम ; लेकिन अपने पापका भार मैं क्यों बढ़ाऊँ ?"

मुँहसे चाहे वे कुछ भी कहें, मैंने जब उन्हें मुक्ति दी, तो वे साँस लेकर मानो जी-से गये।

फिर, मेरे पति डाक्टरी पास करके मुझे साथ लेकर कलकत्तेके बाहर देहातमें चले गये।

गँवई-गाँवमें आकर ऐसा मालूम हुआ, जैसे माकी गोदमें पहुंच गई होऊँ। आठ बरसकी उमरमें मैं गाँव छोड़कर कलकत्ता आई थी। इस बीचमें, दस बरसमें जन्मभूमि मेरे मनके अंदर छायाकी तरह अस्पष्ट हो चली थी। जब तक आँखें थीं, कलकत्ता शहर मेरे चारों तरफ मेरी सारी स्मृतियोंको अपनी ओटमें छिपाये खड़ा था। आँखोंके जाते ही समझ गई कि कलकत्ता सिर्फ आँखोंको बहलाये रखनेवाला शहर है ; वह मनको नहीं भर सकता। दृष्टि खो जानेके बाद ही मेरा वह बाल्यकालका गँवई-गाँव अँधियारिया रातके चमकते हुए तारेकी तरह मेरे मनमें उज्ज्वल हो उठा।

अगहनके अन्तमें हमलोग हासिमपुर पहुंच गये। नई जगह थी। चारों तरफ कैसा दृश्य है, मैं कुछ देख न सकी ; पर

बचपनकी गाँवकी उस गन्धने, उन अनुभूतियोंने मेरी सारी देह जकड़ ली। ओससे भीगे और नये जुते खेतोंसे आनेवाली सुबहकी हवाने, अरहर और सरसोंके हरे-सुनहरे खेतोंको आकाश भरी मीठी सुगन्धने, अहीरोंके उन गीतोंने, और तो क्या, टेढ़ी-मेड़ी कच्ची सड़कसे जानेवाली बैलगाड़ियोंके चलनेकी आवाज तकने मुझे पुलकित कर दिया। मेरी वे जीवन-आरम्भकी अतीत स्मृतियाँ अपनी अनिर्वचनीय ध्वनि और सुगन्ध लिये प्रत्यक्ष-वर्तमानकी तरह मुझे घेर बैठीं। अन्धी आँखें उनका कुछ भी प्रतिवाद न कर सकीं। मैं अपने उसी बचपनमें पहुंच गई; सिर्फ मा ही नहीं मिली, और सब मिला गया। भीतर-ही-भीतर मैं देखने लगी, मेरी दादी अपने बचे-खुचे सिरके बालोंको खोलकर, धूपकी ओर पीठ करके, बैठी-बैठी बड़ी दे रही हैं। पर उनके काँपते हुए पुराने कमजोर कंठसे गाँवके साधु भजनदासके देहतात्त्व-सम्बन्धी गीतकी गुनगुनाहट आज नहीं सुनाई दी। नवान्नका वह उत्सव शीतऋतुके ओससे नहाये-हुए आकाशमें सजीव होकर उठ बैठा; लेकिन, मूसलसे नये धान कूटनेवाली गाँवकी औरतोंमें मेरी उन छोटी-छोटी सहेलियोंका समागम कहाँ गया! शाम होते ही जब पासमें कहीं 'हम्भा' ध्वनि सुनाई पड़ती तो याद आती कि मा संध्या दीप हाथमें लिये ग्वालघरमें दीआ दिखाने जा रही हैं। साथ ही मानो भीगे हुए पुआलके जलनेकी गन्ध और धुआँ आकर मेरे हृदयमें प्रवेश करता; और फिर सुनाई देती, तालाबके उस पारके विद्यालंकारोंके मन्दिरसे आती हुई काँसर-घण्टेकी ध्वनि। न-जाने किसने मेरे बचपनके आठ वर्षोंमेंसे

उनका सारा सार-अंश छानकर सिर्फ उसका रस और सुगन्ध मेरे चारों तरफ छोड़ दी है।

इसी सिलसिलेमें बचपनके व्रत और सवेरे ही उठकर शिव-पूजाके लिए फूल चुननेकी बात याद आने लगती है। यह बात तो माननी ही पड़ेगी कि कलकत्तेमें इधर-उधरकी बातचीत और आवागमनकी गड़बड़ीसे बुद्धिमें थोड़ा-बहुत फर्क आ ही जाता है; धर्म, कर्म, भक्ति और श्रद्धामें गाँवकी-सी निर्मल सरलता नहीं रहती। उस दिनकी बात मुझे याद आती है, जिस दिन अन्धी हो जानेके बाद कलकत्तेमें मेरी एक ग्रामवासिनी सखीने आकर मुझसे कहा था—"तुझे गुस्सा नहीं आता कुमू? मैं होती, तो अपने पतिका कभी मुँह ही नहीं देखती।" मैंने कहा—"बहन, मुँह देखना तो वैसे ही बन्द है, उसके लिए इन जली आँखोंपर ही गुस्सा आता है। उनपर गुस्सा क्यों होऊँ बहन?" समय रहते डाक्टरका इलाज नहीं किया, इस वजहसे मेरी सहेली लावण्यको भी मेरे पतिपर बहुत गुस्सा आया; और उसने मुझे भी गुस्सा दिलानेकी कोशिश की। मैंने उसे समझाया—"संसारमें रहते हुए इच्छा और अनिच्छासे, जानकारी और अनजानमें, भूल और भ्रान्तिसे अनेक प्रकारके सुख-दुःख हुआ करते हैं; पर मनके भीतर भक्तिको अगर स्थिर रख सकी, तो दुःखमें भी एक तरहकी शान्ति मिलती है। नहीं तो, सिर्फ गुस्सा-गुस्सीमें बक-झक करते-करते ही जीवन बीत जाता है। आँखोंसे अन्धी हो गई, यही एक जबरदस्त दुःख है; उसपर पतिसे मनमुटाव करके दुःखका बोझ क्यों बढ़ाऊँ?" मुझ जैसी

लड़कीके मुँहसे पुराने जमानेकी-सी बातें सुनकर लावण्य गुस्सा होकर अवज्ञासे सिर हिलाकर झुंझलाती हुई चली गई। पर मुंहसे मैं कुछ भी क्यों न कहूं, उसकी बातोंमें जहर तो था ही, उसकी बात बिलकुल व्यर्थ नहीं गई। लावण्यके मुंहसे निकली हुई क्रोधकी बातोंने मेरे मनपर दो-एक चिनगारियाँ छोड़ दी थीं। मैंने उन्हें पैरोंसे कुचलकर बुझा तो दिया; मगर फिर भी, दो-एक छाले रह ही गये।

गँवई-गाँवमें आकर मेरी उस शिव-पूजाकी शीतल शेफाली फूलकी सुगन्धसे हृदयकी सम्पूर्ण आशाएँ और श्रद्धा मेरे उस शिशुबालकी तरह ही नवीन और उज्ज्वल हो उठीं। देवताने मेरे हृदय और मेरी घर-गिरहस्थीको परिपूर्ण कर दिया। मैं मस्तक नवाकर उनके चरणोंपर लोट गई। कहा—"हे देव, मेरी आँखें जाती रहीं, अच्छा ही हुआ, तुम तो मेरे हो!"

किन्तु हाय, गलत कहा था मैंने! 'तुम मेरे हो', ऐसा कहना भी दर्प है। 'मैं तुम्हारी हूँ', केवल इतना ही कहनेका हक है मुझे। अरे, एक दिन मेरे देवता ही दबे कंठसे यह बात मुझसे कहलवा लेंगे। हो सकता है कि कुछ भी न रहे, पर मुझे तो रहना ही होगा। किसीपर किसी तरहका मेरा जोर नहीं, सिर्फ अपने ही ऊपर है।

कुछ दिन बड़े आनन्दसे बीते। उधर डाक्टरीमें मेरे पतिका नाम भी होने लगा, प्रतिष्ठा भी बढ़ने लगी। साथ ही, कुछ रुपया भी इकट्ठा हो गया।

मगर रुपया अच्छी चीज नहीं। वह मनको दबा देता है,

हृदयको ढक देता है। मन जब राज्य करता है, तो वह अपना सुख आप ही गढ़ लेता है ; लेकिन धन जब सुख-संचयका भार लेता है, तो मनके लिए फिर कोई काम ही नहीं रह जाता। तब, पहले जहाँ मनका सुख रहता था, घरकी चीज-वस्त असबाब वगैरह उस जगहको घेर लेता है। तब, सुख नहीं मिलता, सुखके बदले मिलता है सिर्फ असबाब वगैरह।

मैं किसी खास बात या खास घटनाका उल्लेख नहीं कर सकती ; मगर, अन्धीमें अनुभव-शक्ति कुछ ज्यादा होनेसे या और किसी कारणसे, इतना मुझे मालूम होने लगा कि आर्थिक उन्नतिके साथ-साथ मेरे पतिमें परिवर्तन होने लगा। यौवनारम्भ की तरह अन्यान्य धर्म-अधर्मोंके विषयमें उनमें जो एक वेदनाकी अनुभुति थी, उसमें मानो दिनों-दिन जड़ता आने लगी। मुझे याद है, वे किसी समय कहा कहते थे, 'केवल आजीविकाके लिए डाक्टरी सीख रहा होऊं, सो बात नहीं ; इससे गरीबोंका उपकार भी किया जा सकता है।' जो डाक्टर गरीब मरीजोंके दरवाजेपर आकर पेशगी फोस बिना लिये नाड़ी नहीं देखना चाहते, उनका जिक्र करते हुए घृणासे उनकी जबान रुक जाती थी। मैं समझ रही हूं कि अब वे दिन नहीं रहे। अपने इकलौते लड़केकी जान बचानेके लिए एक गरीब स्त्रीने उनके पैर पकड़ लिये थे, गिड़गिड़ाकर रोने लगी थी वह ; पर उन्होंने उसकी उपेक्षा की। अन्तमें मैंने अपने सरकी कसम देकर उन्हें भेजा ; मगर उन्होंने तबीयतसे उसका इलाज नहीं किया। जब हम लोगोंके पास रुपया कम था, तब अन्यायसे उपर्जित धनको वे किस

दृष्टिसे देखते थे, मैं जानती हूँ। मगर अब, बैंकमें बहुत रुपये जमा हैं। अब, एक दिनकी बात है कि एक धनी आदमीका गुमाश्ता आकर एकान्तमें उनसे दो दिन तक बहुत-सी बातें कर गया। क्या बातचीत हुई, मुझे नहीं मालूम ; मगर उसके बाद जब वे मेरे पास आये, और अत्यन्त प्रफुल्लताके साथ और-और विषयोंमें बहुत-सी बातें करने लगे, तो मुझे अपने अन्तःकरणकी स्पर्श-शक्तिसे मालूम हुआ कि आज वे अपने ऊपर कलंक पोतकर आये हैं।

अन्धी होनेके पहले मैंने जिन्हें अन्तिम बार देखा था, मेरे वे हृदय-देवता कहाँ हैं ? जिन्होंने मेरी दृष्टिहीन दोनों आँखोंके बीचमें चुम्बन करके मुझे एक दिन देवीके पदपर अभिषिक्त किया था, मैं उनका क्या कर सकी ? एक ही दिनकी रिपु (काम) की आँधीसे जिनका अकस्मात् पतन होता है, वे और एक दिन हृदयावेगसे फिर ऊपर चढ़ सकते हैं ; पर यह जो दिन-पर-दिन क्षण-क्षणमें भीतरसे कठोर होते जाना है, बाहरी बातोंमें बढ़ते हुए हृदय-मनको तिल-तिल करके दबाते जाना है, इसका प्रतिकार सोचती हूँ तो कोई राह ही ढूँढ़े नहीं मिलती।

पतिके साथ मेरा आँखोंसे देखनेका जो विच्छेद हुआ है, वह कुछ भी नहीं ; पर प्राणोंके भीतर तब मैं और भी ज्यादा हाँपने लगती हूँ जब समझती हूँ कि जहाँ मैं हूँ वहाँ वे नहीं हैं। मैं अन्धी हूं, संसारके प्रकाशहीन हृदय-प्रदेशमें अपने उस पहली उमरके नवीन प्रेम, परिपूर्ण भक्ति, अखंड विश्वासको लिये बैठी हूं मैं ; अपने देव-मन्दिरमें जीवनके आरम्भमें अपने बचपनके

उन नन्हे-नन्हे हाथोंसे मैंने जो हरसिंगार-फूलोंके अर्घ्य चढ़ाये थे, अभी तो उनकी ओस भी न सूख पाई होगी कि मेरे नाथ छायासे शीतल इस चिर-नवीनताके देशको छोड़कर रुपये कमानेके पीछे इस संसार-मरुभूमिमें न-जाने कहाँ अदृश्य होते चले जा रहे हैं ! मेरा जिसपर विश्वास है, मैं जिसे धर्म कहती हूं, जिसे मैं समस्त सुख-सम्पत्तिसे बढ़कर समझती हूं, वे बहुत दूरसे मेरी ओर हँसते हुए देख-भर रहे हैं ! पर कोई दिन ऐसा भी था जब यह विच्छेद नहीं था। बचपनमें हम दोनोंने एक ही मार्गसे यात्रा की थी। उसके बाद कबसे मार्ग-भेद होना आरम्भ हुआ, उसे न तो वे ही समझ सके और न मुझे ही मालूम हुआ ; अन्तमें, आज जब मैं उन्हें पुकार रही हूँ, तो कोई जवाब ही नहीं मिलता !

कभी-कभी सोचती हूँ कि शायद अन्धी होनेकी वजहसे मामूली-सी बातको मैं बढ़ा-चढ़ाकर देखती हूं। आँखें होतीं, तो शायद मैं संसारको ठीक संसारकी तरह ही देख सकती और पहचान सकती।

मेरे पतिने भी एक दिन मुझे यही बात समझाई। उस दिन सवेरे एक बूढ़ा किसान अपनी पोतीको हैजासे बचा लेनेकी उम्मीदसे उन्हें बुलाने आया था। मेरे कानोंमें भनक पड़ी, वह कह रहा था—"बेटा, मैं बहुत गरीब हूं ; पर परमात्मा तुम्हारा भला करेंगे !" मेरे हृदयदेवताने कहा—"परमात्मा जो करेंगे, सिर्फ उतने ही से हमारा काम नहीं चलेगा ; पहले, तुम क्या करोगे, सो बताओ !" सुनते ही मैं सोचने लगी, भगवानने

मेरी आँखें ले लीं, साथ ही कान भी क्यों न ले लिये ? बूढ़ेने एक गहरी साँस ली ; और 'हाय भगवान !' कहकर चल दिया। मैंने उसी वक्त महरीसे कहकर उसे पीछेके दरवाजेसे बुलवा लिया, उससे मैंने कहा—"यह लो, बाबा, इन रुपयोंसे तुम अपनी पोतीका इलाज कराना, मेरे पतिका भला चाहते हुए तुम इसी मुहल्लेसे हरीश डाक्टरको लेते जाओ।"

मगर दिन-भर मुझे कुछ भाया नहीं, मुँहमें रुचा ही नहीं कुछ। तीसरे पहर सोतेसे उठकर उन्होंने पूछा—"तुम आज उदास क्यों दीख रही हो ?" पहलेका-सा अभ्यस्त उत्तर जबान पर आ रहा था, 'नहीं तो, कुछ नहीं', पर छल-छंदका जमाना मेरा बीत चुक था, मैंने साफ-साफ कहा—"कितने ही दिनोंसे तुमसे कहना चाहती हूँ, पर कहते-कहते, क्या कहना है, सो भूल जाती हूँ। मालूम नहीं, अपने मनकी बात मैं ठीक तौरसे समझा सकूँगी या नहीं, लेकिन तुम चाहो तो जरूर अपने मनमें समझ सकते हो कि हम दोनोंने जिस तरह एक होकर जीवन आरम्भ किया था, आज वह कुछ और ही तरहका हो गया है।"

उन्होंने हँसकर कहा—"परिवर्तन ही तो संसारका नियम है।"

मैंने कहा—"रुपया-पैसा, रूप-यौवन, सभीका तो परिवर्तन होता है ; लेकिन नित्य-वस्तु क्या कुछ है ही नहीं ?"

तब उन्होंने जरा गम्भीर होकर कहा—"देखो, और-और स्त्रियाँ तो सचमुचके अभावको रोती हैं ; किसीका पति कमाई नहीं करता तो किसीका प्रेम नहीं करता ; और एक तुम हो जो आसमानसे दुःख ढूँढ़ लाती हो !"

मैं उसी वक्त समझ गई कि अन्धता मेरी आँखोंमें सचाईका अंजन लगाकर मुझे इस परिवर्तनशील संसारके बाहर ले गई है, मैं अन्य स्त्रियोंकी तरह नहीं हूं ; मुझे मेरे पति समझेंगे नहीं।

इतनेमें, देशसे एक फुफुआ-सास चली आई, अपने भतीजेकी खबर-सुध लेने। हम दोनोंने उन्हें प्रणाम किया। आशीर्वाद देनेके पहले ही वे बोल उठीं—"बहू, तुम तो अपनी तकदीरसे अन्धी हो गई, अब हमारा अविनाश अन्धी स्त्रीको लेकर कैसे घर-गृहस्थी चलावे ? उसका दूसरा एक ब्याह करा दो न !"

इसपर मेरे पति अगर हँसी-हँसीमें कह देते कि 'ठीक तो है बुआजी, तुम्हीं लोग देख-भालकर कोई सम्बन्ध ठीक करा दो', तो सब झगड़ा ही तय हो जाता। लेकिन उन्होंने संकोचके साथ कहा—"तुम तो बुआजी, ऐसी ही बातें किया करती हो, जिसका सिर, न पैर !"

बुआजीने कहा—"क्यों, बेजा क्या कह रही हूँ मैं ? अच्छा बहू, तुम्हीं बताओ, इसमें बेजा क्या कहा मैंने ?"

मैंने हँसते हुए कहा—"बुआजी, खूब अच्छे आदमीसे तुम सलाह लेने बैठीं ! जिसकी गाँठ काटी जायगी, उसीसे राय पूछी जाती है कहीं ?"

बुआजी बोलीं—"हाँ; बात तो ठीक है। तो फिर हम दोनों अकेलेमें सलाह करेंगे, क्यों रे अविनाश ? लेकिन एक बात है बहू, कुलीन-घरकी स्त्रियोंके जितनी ज्यादा सौतें हों, उतना ही स्वामीका गौरव बढ़ता है। हमारा लड़का डाक्टरी न करके अगर ब्याह करता रहता, तो उसे रोजगारकी पर्वाह ही क्या थी ! रोगी

डाक्टरोंके हाथ पड़ते ही मर जाता है, मरनेपर फिर फीस भी नहीं मिलती ; मगर विधाताका शाप ऐसा है कि कुलीनकी स्त्री मरती ही नहीं ; और जितने दिन वह जीती है, उतना ही पतिको फायदा-ही-फायदा है।"

दो दिन बाद मेरे पतिने मेरे सामने ही बुआजीसे पूछा—"बुआजी, अपना समझकर बिलकुल अपनी-सी होकर बहूको मदद पहुंचाया करे, ऐसी कोई अच्छे घरानेकी स्त्री तुम्हारी निगाहमें है, जो यहाँ रह सके ? इन्हें आँखोंसे दीखता नहीं, इनकी साथिन बनकर हमेशा इनके पास कोई रहे तो मैं निश्चिन्त हो जाऊँ।"

जब शुरू-शुरूमें अन्धी हुई थी, तब वे यह बात कहते तो ठीक भी था, मगर अब तो आँखोंके अभावमें अपने या घर-गृहस्थीके काममें कोई खास अड़चन होती हो, सो भी नहीं ; फिर भी बिना प्रतिवाद किये मैं चुपचाप बैठी रही। बुआजीने कहा—"बहुत, बहुत ! इसकी क्या कमी ? मेरे ही जेठजीकी एक लड़की है, जैसी देखनेमें सुन्दर वैसी ही स्वभावमें लक्ष्मी ! लड़की काफी बड़ी हो चुकी है, योग्य वर नहीं मिल रहा है। लड़केकी तलाशमें हैं वे। तुम्हारे जैसे कुलीन मिल जानेपर तो वे तुरन्त ब्याह कर देंगे।"

उन्होंने चौंककर कहा—"ब्याहके लिए कौन कह रहा है ?"

बुआजी बोलीं—"लो, सुन लो, ब्याह बिना किये क्या भले घरकी लड़की तुम्हारे घर यों ही आकर पड़ी रहेगी ?" बात तो बिलकुल ठीक थी। मेरे पतिसे उसका कोई जवाब देते नहीं बना।

अपनी बन्द आँखोंके अनन्त अन्धकारमें अकेली खड़ी-खड़ी मैं ऊपरको मुंह उठाये पुकारने लगी—'भगवान, मेरे पतिकी रक्षा करो।'

कुछ दिन बाद, एक रोज सवेरे मैं पूजा करके घरसे निकल ही रही थी कि इतनेमें बुआजीने आकर कहा—"बहू, अपनी जिस जेठौती हेमांगिनीका मैंने जिकर किया था, आज वह आ गई देशसे। —हिमू, ये तुम्हारी जीजी हैं, इन्हें प्रणाम करो।"

इतनेमें अचानक कहींसे वे भी आ पहुंचे ; और आकर मानो वे इस अपरिचित स्त्रीको देखकर लौट जानेके लिए उद्यत हुए। बुआजीने कहा—"कहाँ चला अविनाश ?"

मेरे पतिने पूछा—"ये कौन हैं ?"

बुआजीने कहा—"यही तो है मेरी जेठौती हेमांगिनी।"

'ये कब आईं ? किसके साथ आईं ? कैसे आईं ?' इत्यादि प्रश्न करके वे अनावश्यक आश्चर्य प्रकट करने लगे।

मैंने मन-ही-मन कहा—'जो हो रहा है, सो तो मैं सब समझ ही रही हूँ, फिर इसपर छल-छन्द क्यों किया जा रहा है, दुबका-चोरी, दाबना-ढकना, झूठी बातें ? अगर अधर्म करना ही है तो करो न ! करोगे तो अपनी अशान्त प्रवृत्तिके लिए ही करोगे। मेरे लिए ऐसी हीनता, इतना छल छन्द क्यों करते हो ? मुझे बहलाये रखनेके लिए यह ढकोसला क्यों ?'

हेमांगिनीका हाथ पकड़कर मैं उसे अपने सोनेके कमरेमें ले गई। उसके मुंहपर गालोंपर हाथ फेरकर देखा, मुँह शायद सुन्दर ही होगा ; उमर भी चौदह-पन्द्रहसे कम न होगी

बालिका सहसा जोरसे हँस पड़ी, बोली—"यह क्या कर रही हो ? मेरे ऊपरसे भूत झाड़ रही हो क्या ?"

उसकी उस उन्मुक्त सरल हँसीसे हम दोनोंके बीच जो काले बादल थे, वे एक क्षणमें दूर हो गये। दाहना हाथ उसके गलेमें डालकर मैंने कहा "मैं तुम्हें देख रही हूँ बहन!" इतना कहकर मैंने उसके कोमल मुँहपर फिर एक बार हाथ फेरा।

"देख रही हो ?"—कहकर वह फिर हँसने लगी। बोली—"मैं क्या तुम्हारे बगीचेकी सेम हूँ या बैंगन, जो इस तरह हाथ फेरकर देख रही हो कि कितनी बड़ी हुई ?"

तब मुझे यकायक ख्याल आया कि हेमांगिनीको मालूम नहीं कि मैं अन्धी हूं। मैंने कहा—"बहन, मैं जो अन्धी हूँ!"

सुनते ही वह अचम्भेमें पड़के कुछ देर तक गम्भीर बनी रही। मुझे बिलकुल साफ मालूम हुआ कि उसने अपने कुतूहली तरुण विशाल नेत्रोंसे मेरे दृष्टिहीन नेत्रों और चेहरेके भावको खूब गहराईके साथ देखा; उसके बाद कहा "अच्छा! इसीलिए शायद चाचीको यहाँ बुलाया है ?" मैंने कहा—"नहीं, मैंने नहीं बुलाया। तुम्हारी चाची अपने आप ही आई हैं—"

बालिका फिर हंसने लगी, बोली—"दया करके! तब तो मालूम होता है कि दयामयी जल्दी टलनेवाली नहीं! लेकिन बापूजीने मुझे यहाँ क्यों भेजा ?"

इतनेमें बुआजी आ गईं। अब तक मेरे पतिके साथ उनकी बातचीत हो रही थी। बुआजीके कमरेमें घुसते ही, हेमांगिनीने उनसे पूछा—"चाची, देश कब चलोगी, बताओ ?"

बुआजीने कहा—'वाह री लड़की ! आते देर न हुई, जानेकी पड़ गई तुझे ! ऐसी चंचल लड़की तो मैंने कहीं नहीं देखी !"

हेमांगिनीने कहा—"चाची, तुम तो जल्दी यहाँसे जाती नहीं दिखाई देतीं। खैर, तुम्हारा तो यह घर ही ठहरा, जितने दिन चाहो, रहो तुम। पर मैं तो जाऊँगी, पहले ही से कहे देती हूँ तुमसे।"—इतना कहकर उसने मेरा हाथ थामकर कहा—"क्यों बहन, ठीक है न ? तुम लोग तो मेरे ठीक अपने नहीं हो।"

उसके इस सरल प्रश्नका कुछ उत्तर न देकर मैंने उसे अपनी छातीके पास खींच लिया। मैंने देखा कि बुआजी वैसे चाहे कितनी ही जबरदस्त क्यों न हों, पर इस लड़कीको सम्हालना उनके बूतेसे बाहर है। बुआजीने ऊपरसे जरा भी गुस्सा न दिखाकर हेमांगिनीको लाड़ करनेकी कोशिश की; पर उसने उसे अपने ऊपरसे झाड़कर फेंक दिया। बुआजीने इन सब बातोंको लाड़ली लड़कीका लाड़ समझकर हँसकर उड़ा देना चाहा, और वे चली जा रही थीं; इतनेमें फिर क्या-जाने क्या सोचकर लौट आईं और हेमांगिनीसे कहने लगीं—"हिमू, चल तेरे नहानेका वक्त हो गया।"

हेमने मेरे पास आकर कहा—"हम दोनों-जनी घाटपर जाकर नहायेंगी, क्यों बहन ?"

बुआजीकी इच्छाके खिलाफ होनेपर भी उन्होंने इस बातका विरोध नहीं किया; वे जानती थीं कि धींगाधींगी करनेसे हेमांगिनीकी ही जीत होगी; और दोनोंके बीचका विरोध भद्दे रूपमें मेरे सामने प्रकट हो जायगा।

पीछेके तालाबकी तरफ जाते-जाते हेमांगिनीने मुझसे पूछा—"तुम्हारे कोई लड़का-बाला क्यों नहीं हुआ ?"

मैंने जरा मुसकराकर कहा—"क्यों नहीं हुआ, सो मैं कैसे कह सकती हूं ? भगवानने नहीं दिया।"

हेमांगिनी बोली—"जरूर तुमने पहले जनममें कोई पाप किया होगा !"

मैंने कहा—"सो भी भगवान जानते होंगे।"

बालिकाने प्रमाणके तौरपर कहा—"देखो न चाचीको, मनकी बहुत काली हैं न, इसीसे उनकी कोखसे कोई बच्चा ही नहीं होता।"

पाप-पुण्य, सुख-दुःख, दंड और पुरस्कारका सिद्धान्त मैं खुद भी नहीं समझती ; बालिकाको भी समझानेकी कोशिश नहीं की ; सिर्फ एक गहरी साँस लेकर मैंने मन-ही-मन उससे कहा—"तुम्हीं जानो !" हेमांगिनी उसी वक्त मुझसे लिपट गई, हँसकर बोली—"अरे, वाह रे, मेरी बातें सुनकर भी तुम गहरी साँस लेती हो ! मेरी बातोंपर भला कोई ध्यान देता होगा !"

धीरे-धीरे मालूम होने लगा कि मेरे पतिके डाक्टरी-व्यवसायमें बड़ी बाधाएँ पड़ने लगीं। दूरसे बुलावा आनेपर तो वे जाते ही नहीं ; और आस-पास कहींसे बुलावा आनेपर वे झटपट काम खतम करके घर चले आते हैं। पहले तो सिर्फ कामसे फुरसत मिलनेपर दोपहरको खाने और सोनेके लिए भीतर आते थे ; पर अब तो बुआजी चाहे जब उन्हें बुला भेजतीं और वे भी बगैर-जरूरत बुआजीकी खबर-सुध लेने चले आते हैं। बुआजी

जब पुकारकर कहतीं कि 'हिमू, मेरा पनबट्टा तो ले आ जरा', तो मैं समझ जाती कि बुआजीके कमरेमें मेरे स्वामी मौजूद हैं। पहले-पहल दो-चार दिन तक हेमांगिनी पनबट्टा, तेलकी प्याली, सिन्दूरकी डिबिया आदि लेकर पहुंचती रही; लेकिन बादमें वह बार-बार बुलाई जानेपर भी खुद न जाकर महरीके हाथ ही सब चीजें भेजने लगी। बुआजी बुलातीं, 'हेमांगिनी, हिमू, हिमी!' पर बालिका मानो मेरे प्रति अपने एक करुणाके आवेगसे मुझसे उलझी ही रहती; एक तरहकी आशंका और विषाद उसे घेरे रहता। और इसके बादसे वह भूलकर भी मेरे सामने मेरे पतिका जिक्र न करती।

इतनेमें, एक दिन भइया मुझे देखने आये। मैं समझती थी कि भइयाकी दृष्टि तीक्ष्ण है। यहाँ क्या हो रहा है, उनसे छिपाना लगभग असम्भव होगा; क्योंकि भइया बड़े कठोर विचारके हैं। वे अन्यायपर रत्ती-भर भी रहम करना नहीं जानते। सबसे ज्यादा डर मुझे इसी बातका था कि मेरे स्वामी उन्हींके सामने अपराधीके रूपमें खड़े होंगे। हृदयसे प्रसन्नता दिखलाकर मैंने सब-कुछको ढक रखा। मैंने ज्यादा बातें करके, ज्यादा उतावली दिखाकर, बहुत ज्यादा धूमधाम मचाकर चारों ओर मानो एक तरहकी धूल उड़ा रखनेकी कोशिश की। पर मेरे लिए यह सब इतना अस्वाभाविक सिद्ध हुआ कि वही मुझे पकड़वा देनेका कारण बन गया। लेकिन भइया ज्यादा दिन ठहर न सके; मेरे पति ऐसी अस्थिरता दिखाने लगे कि प्रकट रूपसे उसने रूढ़ताका रूप धारण कर लिया। भइया चले

गये। जानेसे पहले अपने हृदयके सम्पूर्ण स्नेहके साथ मेरे माथेपर बहुत देर तक अपना काँपता हुआ हाथ रखे रहे; मन-ही-मन एकाग्र-चित्तसे क्या आशीर्वाद दिया, सो मैं समझ गई। उनके आँसू मेरे आँसूसे भीगे हुए गालोंपर आ-आकर गिरने लगे।

याद है मुझे, चैतके दिन थे। उस दिन शामके वक्त लोग पंठसे लौटकर घर आ रहे थे। दूरसे वर्षाको लिये एक आँधी चली आ रही थी; उसकी हालकी भीगी मिट्टीकी महक और हवाकी नमीसे आकाश व्याप्त हो रहा था। बिछुड़े हुए साथी लोग अँधेरे मैदानमें एक दूसरेको व्याकुल होकर ऊँचे स्वरसे बुला रहे थे। मुझ अन्धीके कमरेमें जब तक मैं अकेली रहती, दीआ नहीं जलाया जाता; इस डरसे कि कहीं उसकी लौ लगाकर मैं कपड़े न जला लूं, कोई दुर्घटना न हो जाय। मैं अपने सुनसान अंधेरे कमरेमें धरतीपर बैठी-बैठी दोनों हाथ जोड़कर अपनी अंधी दुनियाके मालिकको पुकार रही थी, "प्रभो, जब तुम्हारी दया अनुभवमें नहीं आती, और तुम्हारा अभिप्राय जब समझमें नहीं आता, तब अपने अनाथ भग्नहृदयकी पतवारको मैं जी-जानसे थामकर उसे छातीसे लगा लेती हूं। छाती फाड़कर खूनकी धारा बह निकलती है; फिर भी तूफानसे उसे नहीं बचा सकती। मेरी अब और कितनी परीक्षा करोगे, मुझमें बल ही कितना है!" यह कहते-कहते भीतरसे आँसू उमड़ आये; और मैं खाटपर सिर रखकर रोने लगी। तमाम दिन घरका काम-काज करना पड़ता है, हेमांगिनी छायाकी तरह पास-ही-पास बनी रहती है। छातीके भीतर जो आँसू उमड़-उमड़ आते हैं, उन्हें आँखों तक लाकर

बाहर निकाल देनेका भी मौका नहीं मिलता। बहुत दिन बाद आज आँखोंसे आँसू निकले। इतनेमें मालूम हुआ कि खाट कुछ हिली, किसीके चलनेकी धमक-सी सुनाई दी। दूसरे ही क्षण हेमांगिनी आकर मेरे गलेसे लिपट गई; और चुपचाप अपने आँचलसे मेरी आंखें पोंछने लगी। आज शामसे ही वह क्या सोचकर, कैसे आकर मेरी खाटपर सो रही थी, मैं नहीं जान सकी। उसने न तो कुछ पूछा और न कुछ बोली। मैंने भी उससे एक भी शब्द नहीं कहा। वह धीरे-धीरे मेरे माथेपर अपना ठंडा हाथ फेरने लगी।

इस बीचमें कब बादल गरजे, कब जोरकी आँधी आई और खूब वर्षा भी हो गई, मुझे कुछ खबर ही न पड़ी। बहुत दिन बाद एक स्निग्ध शान्तिने आकर ज्वरके दाहसे झुलसे हुए मेरे हृदयको शान्त कर दिया।

दूसरे दिन हेमांगिनीने बुआजीसे कहा—"चाची, मैं पहलेसे कहे देती हूँ, अगर तुम देश न चलोगी तो मैं अपने कैवर्त-भइयाके साथ चली जाऊँगी।"

बुआजीने कहा—"उसके साथ जानेकी क्या जरूरत, म कल जाऊँगी न, दोनों एकसाथ चलेंगी। और यह देख हिमू, अविनाशने तेरे लिए कैसी उमदा मोतीकी जड़ैमा अँगूठी बनवा दी है!"—कहकर बड़े गर्वके साथ बुआजीने अँगूठी हेमांगिनीके हाथमें दी।

हेमांगिनीने कहा—"यह देख चाची, मैं कैसा अच्छा निशाना लगा सकती हूँ!"—और अँगूठी उसने खिड़कीमेंसे पीछेके तालाबमें

फेंक दी। गुस्सेसे रंजसे आश्चर्यसे बुआजीके रोंगटे खड़े हो गये। उन्होंने बार-बार खुशामदके साथ मुझसे कहा—"बहू, अविनाशसे इसकी जिकर मत करना ; नहीं तो बेचारा बड़ा दुःखित होगा। तुम्हें मेरे सिरकी कसम है बहू, कहना मत!"

मैंने कहा—"ज्यादा कहनेकी जरूरत नहीं बुआजी, मैं कोई भी बात नहीं कहूंगी।"

दूसरे दिन, रवाना होनेसे पहले हेमांगिनीने मुझसे लिपटकर कहा—"जीजी, मुझे भूलना मत, याद रखना!"

मैंने बार-बार उसके मुँहपर दोनों हाथ फेरकर कहा—"अन्धे कुछ भूलते नहीं बहन, मेरी तो कोई दुनिया नहीं है, मैं तो सिर्फ मन ही को लिये-हुए हूं!"—कहकर मैंने उसके माथेको अपनी ओर खींचकर चूम लिया। मेरी आँखोंसे उसके बालोंपर झरझर आँसू झरने लगे।

हेमांगिनीके चले जानेपर मेरी दुनिया सूख-सी गई। उसने मेरे प्राणोंमें जो एक तरहकी सुगन्ध, एक तरहका सौन्दर्य और संगीत, एक तरहका उज्ज्वल प्रकाश और कोमल तरुणता ला दी थी, उसके चले जानेपर एक बार मैंने अपनी अँधेरी दुनियामें, अपने चारों तरफ, दोनों हाथ बढ़ाकर टटोल-टटोलकर देखा कि मेरा कहाँ क्या है।

उस दिन मेरे पतिने आकर विशेष प्रसन्नता दिखलाते हुए मुझसे कहा—"ये लोग चली गईं, अब जरा हलके हुए, अब जरा काम-काज करनेका समय मिलेगा।"

धिक्कार, धिक्कार है मुझे! मेरे लिए इतनी चतुराई, इतना

छल, इतना कपट क्यों ? मैं क्या सत्यसे डरती हूँ ? मैं क्या चोटसे कभी घबराई हूँ ? उन्हें क्या मालूम नहीं कि जब मैंने उनकी खुशीमें अपनी खुशी समझकर अपनी दोनों आँखें दी थीं, तब मैंने अपने चिर-अन्धकारको कितनी खुशीसे अपना लिया था ?

अब तक मेरे और उनके बीच सिर्फ अन्धताका ही परदा था ; आजसे उसपर और-एक परदा पड़ गया। मेरे पति भूलकर भी कभी हेमांगिनीका नाम मेरे सामने जबानपर नहीं लाते। मानो उनकी दुनियासे हेमांगिनी सदाके लिए एकदम लुप्त हो गई हो, मानो उनके मनपर उसने कभी भी जरा-सी लकीर तक न खींची हो। मगर इधर चिट्ठी-पत्रीसे वे हमेशा उसकी खबर पाते रहते हैं, इस बातका मैं अनायास ही अनुभव कर लिया करती हूं। जैसे, तालाबमें बरसातका या बाहरका पानी जिस रोज जरा भी ज्यादा आ जाता है उसी वक्त कमलके डंठलमें खिंचाव पड़ता है, उसी तरह उनके भीतर जिस दिन जरा भी बाढ़ आती, जरा भी उफान आता, उसी दिन अपने हृदयकी जड़में मुझे उसका पता लग जाता है। खिंचाव ऐसी ही चीज है। कब उन्हें हेमांगिनीकी खबर मिलती और कब नहीं, मुझसे कुछ छिपा नहीं रहता। लेकिन मैं उन्हें उसकी याद नहीं दिला सकती थी। मेरे अँधेरे हृदय-आकाशमें वह जो एक उन्मत्त और आजाद चमकता हुआ सुन्दर तारा क्षण-भरके लिए उगा था, उसकी जरा खबर पाने और थोड़ी-बहुत चर्चा करनेके लिए मेरा जी प्यासा-सा बना रहता ; मगर फिर भी अपने पतिके

सामने क्षण-भरके लिए उसका नाम लेनेका भी मुझे न हक था, न हिम्मत। और इस तरह हम दोनोंके बीच बातचीत और वेदनासे भरी ऐसी एक तरहकी खामोशी जमी बैठी थी कि जिसकी याद आते ही जी दुखने लगता।

बैसाख महीनेके बीचो-बीच एक दिन महरीने आकर मुझसे पूछा—"बहूजी, नदी-किनारे घाटपर आज अपनी नाव कहाँके लिए तैयार हो रही है? बाबूजी कहीं जा रहे हैं क्या?"

मैं समझ रही थी कि कुछ तैयारियाँ-सी हो रही हैं, फिर मेरे भाग्याकाशमें आँधीके पहलेकी-सी निस्तब्धता और उसके बाद प्रलयके छिन्न-विच्छिन्न बादल आ-आकर जम रहे हैं। और यह भी महसूस कर रही थी कि संहारकारी शंकर नीरव अंगुलीके इशारेसे अपनी सारी प्रलय-शक्तिको मेरे सिरपर इकट्ठा कर रहे हैं। महरीसे मैंने कहा—"कहाँ, मुझे तो अभी तक कोई खबर नहीं मिली?"

महरीने फिर कुछ पूछनेकी हिम्मत नहीं की; एक गहरी साँस लेकर चली गई।

बहुत रात बीते पतिने आकर मुझसे कहा—"दूरसे मेरा बुलावा आया है, कल सवेरे ही मुझे रवाना होना पड़ेगा। लौटनेमें दो-तीन दिनकी देर होगी।"

मैं बिस्तरसे उठकर खड़ी हो गई, बोली—"क्यों मुझसे झूठ बोल रहे हो?"

पतिने काँपते हुए स्वरसे कहा—"झूठ मैंने क्या कहा?"

मैं ने कहा—"तुम ब्याह करने जा रहे हो!"

वे चुप हो रहे। मैं भी ज्यों-की-त्यों स्थिर खड़ी रही। बहुत देर तक हम दोनों बिलकुल खामोश रहे, घरमें बिलकुल सन्नाटा रहा। अन्तमें मैंने कहा—"कुछ तो जवाब दो? कहो कि हाँ, मैं ब्याह करने जा रहा हूँ!"

उन्होंने प्रतिध्वनिकी भाँति उत्तर दिया—"हाँ, मैं ब्याह करने जा रहा हूँ।"

मैंने कहा—"नहीं, तुम नहीं जा सकते; मैं तुम्हें इस खतरेसे, इस महापापसे बचाऊँगी। इतना भी अगर न कर सकी, तो मैं तुम्हारी स्त्री किस बातकी? किस लिए मैंने इतनी शिव-पूजा की थी?"

फिर बहुत देर तक सन्नाटा रहा। मैंने जमीनपर पड़कर पतिके पैरोंसे लिपटकर कहा—"मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, कौन-सा कसूर किया है, जो आज तुम्हें दूसरी स्त्रीकी जरूरत पड़ गई? तुम्हें मेरे सरकी कसम है, सच-सच बताओ?"

तब मेरे स्वामीने धीरे-धीरे कहा—"सच-सच ही कह रहा हूँ। तुम्हारे अन्धेपनने तुम्हें एक अनन्त आवरणमें घेर रखा है, तुम तक मैं किसी भी तरह पहुंच ही नहीं पाता। तुम मेरे लिए देवीके समान किन्तु भयानक हो, तुम्हारे साथ मैं रोजमर्राकी घर-गृहस्थी नहीं चला सकता। जिसपर मैं बक-झक सकूँ, गुस्सा हो सकूँ, जिससे मैं प्यार कर सकूँ, सुहाग कर सकूँ, जिसे मैं गहने-कपड़े बनवा दे सकूं, ऐसी एक साधारण स्त्री चाहिए मुझे।"

"मेरी छातीके भीतर चीरकर देखो, मैं बिलकुल साधारण स्त्री हूँ या नहीं? देखोगे, ब्याहके दिनकी उस बालिकाके सिवा और कुछ

भी नहीं हूँ मैं। मैं तुमपर श्रद्धा करना चाहती हूँ, भरोसा करना चाहती हूँ, तुम्हारी मैं पूजा करना चाहती हूँ। तुम अपना अपमान करके, मुझे दुःसह दुःख देकर, मुझे अपनेसे बड़ा मत बनाओ प्रियतम, मुझे सब विषयोंमें अपने पैरोंके नीचे रखो नाथ!"

मैंने क्या-क्या बातें कही थीं, सो क्या मुझे याद हैं? विक्षुब्ध समुद्र क्या अपनी गर्जन खुद सुन पाता है? सिर्फ इतना याद है कि मैंने कहा था—"अगर मैं सती होऊँ, तो भगवान् साक्षी रहें, तुम किसी भी तरह अपनी धार्मिक प्रतिज्ञा भंग न कर सकोगे। उस महापापके होनेके पहले या तो मैं विधवा हो जाऊँगी, या हेमांगिनी नहीं बचेगी।"—इतना कहते-कहते मैं बेहोश होकर गिर पड़ी।

जब मुझे होश आया, तब रात खतम होनेपर बोलनेवाली चिड़ियोंने चुहचुहाना शुरू नहीं किया था; और मेरे स्वामी चले गये थे।

अपने घरके ठाकुरद्वारेमें जाकर दरवाजा बन्द करके मैं पूजा करने बैठ गई। तमाम दिन मैं बाहर नहीं निकली। शामको बड़ी जोरकी आँधी आई, तूफान था वह, सारा मकान काँपने लगा। फिर भी मैंने यह नहीं कहा कि 'हे भगवान, मेरे पति इस समय नदीमें हैं, उनकी रक्षा करो।' मैं एकाग्र चित्तसे केवल यही कहने लगी—'भगवान, मेरी तकदीरमें जो बदा है सो होगा, मगर मेरे स्वामीको तुम इस महापातकसे बचाओ।'

सारी रात बीत गई। उसके दूसरे दिन भी मैंने अपना आसन नहीं छोड़ा। बिना खाये-पीये और बिना सोये मुझे

किसने बल दिया, मालूम नहीं ; मैं पाषाण-मूर्तिके सामने पाषाण-मूर्तिकी तरह ज्यों-की-त्यों स्थिर बैठी रही।

शामके वक्त बाहरसे दरवाजेपर धक्केका शब्द सुनाई दिया। दरवाजा तोड़कर जब लोग भीतर घुसे, तब मैं बेहोश पड़ी थी।

बेहोशी दूर होनेपर मैंने सुना—"जीजी!" देखा कि मैं हेमांगिनीकी गोदमें पड़ी हूं। सिर हिलाते ही मालूम हुआ कि वह ब्याहकी पोशाक पहने हुए है। भीतरसे मेरी पसलियाँ तक चीख उठीं—'हा भगवन्, मेरी प्रार्थना नहीं सुनी तुमने! आखिर मेरे स्वामीका पतन हो ही गया!'

हेमांगिनीने सिर झुकाकर धीरेसे मुझसे कहा—"जीजी, तुम्हारी असीस लेने आई हूं मैं।"

पहले तो मैं क्षण-भरके लिए पत्थर-सी कठोर हो गई ; फिर दूसरे ही क्षण उठकर बैठ गई। मैंने कहा—"तुम्हें आशीर्वाद दूंगी बहन। तुम्हारा क्या कसूर?"

हेमांगिनी अपने स्वाभाविक मीठे और ऊँचे स्वरसे हँस उठी ; बोली—"कसूर! तुम खुद ब्याह करो तो कसूर नहीं, और मैं करूँ तो कसूर है?"

हेमांगिनीसे लिपटकर मैं भी हँसने लगी। मन-ही-मन कहा—'संसारमें मेरी ही प्रार्थना क्या सबसे बढ़कर है? उनकी इच्छा क्या कोई चीज ही नहीं? जो चोट पड़ी है वह मेरे ही सिरपर पड़े ; पर हृदयके अन्दर जहाँ मेरा धर्म है, जहाँ मेरी श्रद्धा है, वहाँ उसे हरगिज न पड़ने दूंगी। मैं जैसी थी, वैसी ही रहूंगी।'

हेमांगिनीने मेरे पाँव पड़कर पाँवकी धूल अपने माथेसे लगाई। मैंने कहा—"तुम चिर-सौभाग्यवती होओ, चिर-सुखी होओ।"

हेमांगिनीने कहा—"आज सिर्फ असीस देकर ही छुटकारा न पा सकोगी जीजी, अपनी बहन और बहनोईको भी तुम्हें अपने ही हाथोंसे वरण करना होगा। तुम सती हो, तुम्हारा आशीर्वाद ही हम दोनोंके जीवनका मूलधन होगा जीजी! उनकी शरम करनेसे काम न चलेगा। अगर आज्ञा दो, तो उन्हें मैं ले आऊँ भीतर?"

मैंने कहा—"जाओ, ले आओ।"

कुछ देर बाद मेरे कमरेमें नये पद-शब्दने प्रवेश किया। स्नेहका एक प्रश्न मेरे कानोंमें पड़ा—"अच्छी तरह है कुमू?"

मैंने उतावलीके साथ बिछौनेसे उठकर भइयाके पाँवके पास प्रणाम करके कहा—"भइया!"

हेमांगिनी बोली—"भइया कैसे? कान ऐंठ दो इनके, तुम्हारे अब ये भइया नहीं, छोटे बहनोई हैं!"

तब मैं सब बात समझ गई। मुझे मालूम था, भइयाकी प्रतिज्ञा थी कि ब्याह नहीं करेंगे। मा नहीं हैं; कह-सुनकर ब्याह करानेवाला और कोई भी न था। अब शायद मैंने ही उनका ब्याह करा दिया। मेरी दोनों आँखोंसे आँसुओंकी वर्षा-सी होने लगी, किसी भी तरह मैं उन्हें रोक न सकी। भइया धीरे-धीरे मेरे बालोंमें हाथ फेरने लगे। और हेमांगिनी मुझसे लिपटकर सिर्फ हँसती ही रही।

रातको नींद नहीं आ रही थी, मैं उत्कंठित चित्तसे पतिके आगमनकी आशा कर रही थी। लज्जा और निराशाको वे कैसे दूर करेंगे, मेरी कुछ समझमें नहीं आ रहा था।

बहुत रात बीते धीरे-धीरे दरवाजा खुला। मैं चौंककर बैठ गई। मेरे पतिके पैरोंकी आहट थी। छातीके भीतर मेरा कलेजा और उसके साथ पसलियाँ भी पछाड़ें खाने लगीं।

उन्होंने बिस्तरपर आकर मेरा हाथ थामकर कहा—"तुम्हारे भइयाने ही मुझे बचाया है। मैं क्षण-भरके मोहमें आकर मरने जा रहा था। उस दिन जब मैंने नावपर पैर रखा था तब मेरी छातीपर कितना भारी पत्थर सवार था, सो मैं जानता हूं या भगवान ही जानते हैं। जब नदीमें जोरकी आँधी आई, तो प्राणोंका भी भय होता था और साथ ही यह भी सोचता था कि डूब जाऊँ तो मेरा उद्धार हो जाय। माथुरगंजमें पहुंचकर सुना कि एक दिन पहले ही तुम्हारे भइयाके साथ हेमांगिनीका ब्याह हो गया है। कितनी शरमसे और कितने आनन्दसे नावपर वापस आया, सो मैं कह नहीं सकता। इन्हीं दो दिनोंमें मैं खूब अच्छी तरह समझ गया हूँ कि तुम्हारे बगैर मुझे कोई सुख नहीं, तुम्हारे सिवा मेरे लिए और कहीं भी शान्ति नहीं, तुम मेरी देवी हो।"

मैंने हँसकर कहा—"नहीं, मुझे देवी बनानेकी जरूरत नहीं, मैं तुम्हारे घरकी गृहिणी हूँ, मैं तुम्हारी साधारण स्त्री मात्र हूँ, और कुछ नहीं।"

स्वामीने कहा—"मेरी भी एक बात तुम्हें रखनी होगी। मुझे

अब देवता कहकर कभी भी किसी दिन शरमिन्दा न करना। मैं भी तुम्हारा साधारण पति हूँ, तुम्हारा प्रेमी हूँ।"

दूसरे दिन उलुध्वनि और शंखध्वनिसे सारा मुहल्ला गूँज उठा। हेमांगिनी उठते-बैठते, नहाते-खाते, सोते-जागते, शाम-सवेरे हर वक्त मेरे पतिका मजाक उड़ाने लगी। बेचारे तंग आ गये, परेशान हो गये। पर वे कहाँ गये थे, क्या हुआ था, मुझसे किसीने भी उसका कोई जिक्र नहीं किया।

'चन्ना फू:'

रायचरण जब पहले-पहल नौकरीपर बहाल हुआ, तब उसकी उमर थी कुल बारह सालकी। जसोर जिलेमें उसका घर था। लम्बे-लम्बे बाल, बड़ी-बड़ी आँखें और काली-चिकनी छरहरी देह थी उसकी। वह जातिका कायस्थ था; और उसके मालिक भी कायस्थ थे। मालिकके घर साल-भरका एक बच्चा था, उसीको खिलाना सम्हालना और घुमाना-फिराना, यही उसकी नौकरी थी।

धीरे-धीरे उस बच्चेने रायचरणकी गोद छोड़कर स्कूलमें, स्कूल छोड़कर कालेजमें और आखिरमें कालेज छोड़कर मुन्सिफीमें कदम रखा। और रायचरण अब भी उनके यहाँ नौकर है।

उसका एक मालिक और बढ़ गया है; बहूजी आ गई हैं। इसलिए अनुकूल-बाबूपर रायचरणका पहले जितना अधिकार था उसका अधिकांश नवीन गृहिणीके हाथ लग गया है।

पर मालिकिनने जैसे रायचरणका पहलेका हक कुछ घटा दिया है, वैसे ही एक नया हक देकर उसकी बहुत-कुछ पूर्ति भी कर दी है। थोड़े ही दिन हुए, अनुकूलके एक लड़का पैदा हुआ है; और रायचरणने उसे सिर्फ अपनी कोशिश और मेहनतसे जरूरतसे ज्यादा अपना लिया है।

बच्चेको वह ऐसे उत्साहके साथ भूला झुलाता है, ऐसी चतुराईके साथ उसके दोनों हाथ पकड़कर ऊपरको उछालता है, जवाबकी कोई उम्मीद न रखकर उससे ऐसे-ऐसे बेमतलबके सवाल पूछता रहता है, और उसके मुंहके पास अपना सिर ले जाकर ऐसा हिलाया करता है कि वह नन्हा-सा आनुकोलव रायचरणको देखते ही मारे खुशीके फूलकर कुप्पा हो जाता!

वह नन्हा-सा बच्चा जब पेट और घुटनोंके बल चलकर चौखट पार होता और कोई पकड़ने आता तो खिलखिलाकर हँसता हुआ जल्दीसे खतरेसे खाली जगहमें दुबकनेकी कोशिश करता, तब रायचरण उसकी असाधारण चतुरता और विचार-बुद्धिको देखकर ताज्जुबमें पड़ जाता। उसकी माके पास जाकर वह बड़े गर्व और आश्चर्यके साथ कहता—"बहूजी, तुम्हारा लड़का बड़ा होनेपर 'जज' होगा, पाँच हजार रुपये पाया करेगा!"

संसारमें और-भी कोई मानव-सन्तान इस उमरमें चौखट पार करना आदि ऐसी-ऐसी चतुराईका परिचय दे सकती है, यह बात रायचरणके कयासके बाहर थी। उसका खयाल था कि सिर्फ भावी जजोंके लिए ही ऐसी बातें सम्भव हैं, औरोंके लिए नहीं।

आखिर बच्चेने जब डगमगाते हुए चलना शुरू किया, तो वह भी बड़े आश्चर्यकी बात हो गई; और जब माको 'म्मा', बुआको 'उआ' और रायचरणको 'चन्ना' कहकर पुकारने लगा, तब तो रायचरण इस आश्चर्यजनक संवादको बड़े उत्साहसे चारों तरफ घोषित करने लगा।

सबसे बड़ी ताज्जुबकी बात तो यह है कि माको 'म्मा' कहता है, बुआसे 'उआ' कहता है, पर उसे कहता है 'चन्ना'! वास्तवमें बच्चेके दिमागमें यह बुद्धि आई कहाँसे, बतलाना कठिन है। अवश्य ही कोई ज्यादा उमरका आदमी ऐसी तीक्ष्ण-बुद्धिका परिचय न दे सकता था, और देनेपर भी उसके जज होनेकी सम्भावनामें सबको पूरा-पूरा सन्देह ही रह जाता।

कुछ दिनसे रायचरणको मुँहमें रस्सी दबाकर घोड़ा बनना पड़ता है। पहलवान बनकर बच्चेके साथ कुश्ती भी लड़नी पड़ती है; और उसमें अगर हारकर वह जमीनपर गिर नहीं पड़ता तो बेचारेकी शामत आ जाती है।

इसी समय अनुकूल-बाबूका पद्मा-नदीके किनारे किसी जिलेमें तबादला हो गया। वहाँ जाते वक्त वे अपने बच्चेके लिए कलकत्तासे एक छोटी-सी ठेला-गाड़ी लेते गये। रायचरण सुबह-शाम दोनों वक्त नवकुमारको साटनका कुड़ता, सिरपर जरीदार टोपी, हाथमें सोनेके कड़े और पैरोंमें लच्छे पहनाकर उस गाड़ीमें बिठाकर हवा खिलाने ले जाता।

वर्षाऋतु आई। भूखी पद्मा-नदी खेत, बाग-बगीचे, गाँव सबको एक-एक कौरमें निगलने लगी। चरकी रेतीपरके पेड़-पौधे

सब पानीमें डूब गये। नदीके किनारेके कगारे धसकनेकी डरावनी आवाज और पानीकी गर्जनसे दसों दिशाएँ मुखरित हो उठीं। तेजीसे दौड़ती हुई फेनराशिने नदीकी तीव्र गतिको और भी भयानक कर दिया।

उस दिन तीसरे पहर बादल घिर आये थे, पर बरसनेकी कोई सम्भावना न थी। आज रायचरणका खामखयाली नन्हा-सा मालिक किसी भी तरह घरमें नहीं रहना चाहता। गाड़ीपर सवार होकर हवाखोरीको जानेके लिए अड़ गया। रायचरण धीरे-धीरे गाड़ीको ठेलता हुआ खेतोंके पास नदीके किनारे जा पहुंचा। नदीमें एक भी नाव न थी, खेतमें भी कोई आदमी न था। बादलोंकी सँधोंमेंसे दिखाई दिया कि उस पार सुनसान बालुकामय नदी-किनारे नीरव समारोहके साथ सूर्यास्तकी तैयारियाँ हो रही हैं। उस निस्तब्धताके बीचमेंसे बालक सहसा एक पेड़की तरफ उँगली उठाकर बोल उठा—"चन्ना, फू: !"

पास ही दलदल जमीनपर एक कदमका पेड़ खड़ा था, उसकी ऊँची शाखापर कुछ फूल खिले हुए थे; उन्हींपर बालककी लुब्ध दृष्टि आकृष्ट हुई थी। तीन-चार दिन हुए, रायचरणने सींकोंमें गूँथ-गूँथकर उसे एक कदमके फूलोंकी गाड़ी बना दी थी, उसमें रस्सी बाँधकर खिंचवानेमें उसे ऐसा आनन्द आया कि उस रोज रायचरणको मुंहमें लगाम नहीं लगानी पड़ी; घोड़ेसे वह एकाएक सईसके पदपर चढ़ा दिया गया।

दलदलमेंसे जाकर फूल लानेकी रायचरणकी इच्छा न हुई, उसने चटसे दूसरी ओर उँगली दिखाकर कहा—"देखो, देखो,

बोऽओ देखो, चिरैया! देखो तो, उड़ गई, आहा! अइयो री चिरैया, लल्लूको लड्डू दै जइयो!"—इस प्रकार लगातार विचित्र बातें करता हुआ वह जोरोंसे गाड़ी चलाने लगा।

पर जो लड़का बड़ा होकर जज होगा, उसे इस तरह फुसलाने की कोशिश करना व्यर्थ है; खासकर उस वक्त, जब कि चारों तरफ दृष्टि आकर्षण करनेवाली और कोई चीज ही न हो। लिहाजा रायचरणका काल्पनिक चिरैयाका बहाना ज्यादा देर न टिक सका।

रायचरणने कहा—"तो तुम गाड़ीमें बैठे रहना, अच्छा, मैं चटसे फूल लिये आता हूँ। खबरदार, पानीके किनारे न जाना!" यह कहता हुआ वह धोती ऊपर चढ़ाकर कदमके पेड़की ओर चल दिया।

पर, वह जो पानीके किनारे जानेको मना कर गया था, उससे बच्चेका मन कदमके फूलसे हटकर उसी क्षण पानीकी तरफ दौड़ गया। उसने देखा कि पानी कलकल छलछल करता हुआ दौड़ा जा रहा है! उसे ऐसा लगा कि जैसे शरारत करके किसी एक बड़े रायचरणके हाथसे निकलकर एक लाख शिशु-प्रवाह हँसता और कलकल गीत गाता हुआ मना किये हुए स्थानकी ओर तेजीसे भागा जा रहा हो।

उसके इस बुरे दृष्टान्तसे मानव-शिशुका चित्त चंचल हो उठा। वह गाड़ीसे उतरकर धीरे-धीरे पानीके पास पहुंचा। एक लम्बे तिनकेको उठाकर उसे मछली पकड़नेकी बंसी बनाकर पानीमें झुकके उससे मछली पकड़ने लगा। और नदीका चंचल पानी

अस्फुट कलकल-भाषामें बार-बार उसे अपने खेलमें शामिल होनेके लिए बुलाने लगा।

सहसा पानीमें किसी चीजके गिरनेकी आवाज हुई। पर, बरसातमें पद्माके किनारे ऐसे कितने ही शब्द हुआ करते हैं। रायचरणने झोली भरकर कदम-फूल तोड़े; और पेड़से उतरकर मुसकराता हुआ गाड़ीके पास पहुंचा। वहाँ जाकर देखता है तो, बच्चा नदारत! चारों तरफ अच्छी तरह निगाह दौड़ाकर देखा, पर, कहीं किसीका कोई चिह्न तक न दिखाई दिया।

क्षण भरमें रायचरणका खून बर्फ हो गया। सारी दुनिया उसे सूनी, उदास और धुआँधार दीखने लगी। वह अपने टूटे हुए हृदयसे चीख उठा—"लल्लू! लल्लू!"

पर 'चन्ना' कहकर किसीने जवाब ही नहीं दिया, शरारत करके किसी बच्चेका कंठ खिलखिला नहीं उठा! सिर्फ पद्मा ही पहलेकी तरह कलकल छलछल करके दौड़ती रही, मानो वह कुछ जानती ही नहीं, मानो उसे दुनियाकी इन छोटी-छोटी बातोंपर ध्यान देनेकी फुरसत ही नहीं।

जब शाम हुई तो बच्चेकी उत्कण्ठित माने चारों तरफ आदमी दौड़ाये। लालटेन हाथमें लिये लोग नदीके किनारे पहुंचे। वहाँ देखा तो रायचरण आँधीकी हवाकी तरह खेतोंके चारों तरफ "लल्लू, लल्लू"—चिल्लाता हुआ भटक रहा है, उसका गला बैठ गया है। अन्तमें घर लौटकर रायचरण धड़ामसे अपनी माजीके पैरोंपर गिर पड़ा। उससे बार-बार पूछा गया, पर वह रो-रोकर यही कहता रहा—"कहाँ गया, कुछ भी पता नहीं लगा मा!"

यद्यपि सब समझ गये कि यह काम पद्माका ही है, फिर भी गाँवके बाहर जो बंजारे ठहरे हुए थे, उनपर सन्देह रह ही गया। माके मनमें तो यह सन्देह पैदा हुआ कि कहीं रायचरणने ही न चुरा लिया हो! यहाँ तक कि वह उसे बुलाकर कहने लगीं— "तू मेरे ललाको लौटा दे, तुझे जितने रुपये चाहिये, मैं दूँगी।"

सुनकर रायचरणने सिर्फ माथेपर हाथ दे मारा।

अन्तमें मालिकिनने उसे निकाल बाहर कर दिया।

२

रायचरण देश चला गया। अब तक उसके कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ था; और होनेकी कोई उम्मीद भी नहीं थी। पर होनहारकी बात कि उसी साल, इतनी ज्यादा उमरमें, उसकी स्त्रीके एक बच्चा हुआ और उसीमें उसकी मृत्यु भी हो गई। अपने उस बच्चेपर रायचरणको बड़ा गुस्सा आया; उसे वह बैरी-सा दीखने लगा। उसने सोचा, यह छल करके ललाकी जगह अपना हक जमाने आया है। सोचने लगा, मालिकके इकलौते बेटेको पानीमें बहाकर खुद पुत्र-सुखका उपभोग करना उसके लिए महापातकके सिवा और कुछ नहीं। यहाँ तक कि रायचरणकी विधवा बहन अगर न होती, तो शायद वह बच्चा दुनियाकी हवामें ज्यादा दिन तक साँस भी न ले सकता था।

ताज्जुबकी बात है कि उस लड़केने भी कुछ दिन बाद ललूकी तरह ही चौखट पार करना शुरू कर दिया; और सब तरहकी मनाहियोंको न माननेमें ठीक वैसी ही चतुरता दिखाने लगा! और तो क्या, उसके गलेका स्वर, हँसने और रोनेकी

आवाज बहुत-कुछ उससे मिलती-जुलती है। किसी-किसी दिन रायचरण जब उसका रोना सुनता, तो उसकी छाती सहसा धड़क उठती; उसे ऐसा लगता कि उसका वह ठल्ला ही कहीं भटक-भटककर रो रहा है।

फुलना भी, रायचरणकी बहनने अपने भतीजेका नाम रखा था फुलना, बुआको 'उआ' कहकर पुकारने लगा। इस परिचित सम्बोधनको सुनकर एक दिन सहसा रायचरणको ख्याल आया कि जरूर ठल्ला ही, मेरे मोहको न छोड़ सकनेकी वजहसे, मेरे ही घर आकर पैदा हुआ है।

इस विश्वासके अनुकूल कुछ अकाट्य युक्तियाँ भी थीं। पहले तो, उसके चले जानेके बाद इतनी जल्दी उसका जन्म होना। दूसरे, इतने वर्ष बाद सहसा उसकी स्त्रीके गर्भसे लड़का पैदा होना, यह उसकी स्त्रीके गुणसे हरगिज नहीं हो सकता। तीसरे, यह भी उसी तरह घुटनोंके बल चलता है, डगमगाता हुआ घूमता है और बुआको 'उआ' कहता है! जिन लक्षणोंके होनेसे भविष्यमें जज होनेकी सम्भावना है, उनमें से अधिकांश इसमें मौजूद हैं।

तब माजीके उस हृदय-विदारक सन्देहकी बात उसे सहसा याद आ गई; और बड़े आश्चर्यमें आकर वह मन-ही-मन कहने लगा, 'हाँ-हाँ, माके मनने ठीक जान लिया था कि किसीने उसके बच्चेको चुरा लिया है। ठीक तो है, तभी तो वह मेरे घर आकर पैदा हुआ है।' फिर, इतने दिन जो उसने बच्चेकी लापरवाही रखी, उसके लिए उसे बड़ा पश्चात्ताप हुआ। बच्चेको अब वह बहुत ज्यादा चाहने प्यार करने लगा।

अबसे फुलनाको वह इस तरह पालने लगा जैसे वह किसी बड़े घरानेका बच्चा हो। उसके लिए वह साटनका कोट खरीद लाया, जरीदार टोपी भी ले आया और अपनी स्त्रीके गहने गलवाकर उसके लिए कड़े और लच्छे भी बनवा दिये। मुहल्लेके किसी भी लड़केके साथ वह उसे खेलने नहीं देता। रात-दिन खुद ही उसका साथी बनकर उससे खेलता रहता है। मुहल्लेके लड़के उसे मौका पाते ही 'नवाबका नाती' कहकर चिढ़ाने लगते हैं। गाँवके लोग रायचरणके ऐसे उन्मत्तवत् आचरणपर आश्चर्य करने लगे हैं।

फुलना जब पढ़नेके लायक हुआ, तब रायचरण अपनी जमीन वगैरह सब बेच-खोचकर उसे कलकत्ता ले गया। वहाँ बड़ी मुश्किलसे एक नौकरी तलाश करके फुलनाको उसने स्कूलमें भरती कर दिया। खुद जैसे-तैसे गुजर कर लेता; पर लड़केको अच्छा खाना, बढ़िया पोशाक और अच्छी शिक्षा देनेमें कोई कसर न रखता। मन-ही-मन कहता—'लल्लूजी, तुम मेरे मोहसे मेरे घर आये हो, इसलिए तुम्हारा निरादर मैं नहीं कर सकता।'

इसी तरह बारह साल बीत गये। लड़का पढ़ने-लिखनेमें तेज और देखनेमें भी अच्छा मोटा-ताजा साँवले रंगका है, केश-वेशकी सजावटकी तरफ पूरा ध्यान रखता है, मिजाजमें कुछ आरामतलबी और शौकीनी है। बापको ठीक बाप जैसा नहीं समझता। कारण, रायचरण स्नेह करनेमें बाप और सेवा करनेमें नौकर जैसा बरताव करता है। इसके सिवा उसमें एक त्रुटि भी है, यह कि वह फुलनाका बाप है, यह बात उसने सबसे

छिपा रखी थी। जिस छात्रावासमें फुलना रहता है, वहाँके और सब लड़के गँवार रायचरणकी हँसी उड़ाया करते हैं, और कभी-कभी पिताकी गैरहाजिरीमें फुलना भी उसमें शामिल हो जाया करता है। फिर भी, वत्सलस्वभाव भोलेभाले रायचरणको सभी लड़के बहुत प्यार करते हैं। फुलना भी प्यार करता है; पर उसमें पितृ-स्नेहकी जगह अनुग्रह ही ज्यादा रहता है।

रायचरण अब बूढ़ा हो चला। उसका मालिक अब हर वक्त काम-काजमें दोष पकड़ता रहता है। वास्तवमें उसका शरीर भी शिथिल हो चला है, काममें वह उतना ध्यान नहीं रख सकता, बार-बार भूल जाता है; पर जो पूरी तनखा देता है वह बुढ़ापेका उज्र नहीं सुन सकता। इधर वह जो खेत-जोत बेचकर रुपये लाया था, वे भी खतम हो चले। फुलना भी आजकल अपनेको कपड़े-लत्तोंसे कुछ तंग महसूस करने लगा है।

सहसा एक दिन रायचरणने कामसे छुट्टी ले ली; और फुलना को कुछ रुपये देकर बोला—"जरूरी काम है मुझे, कुछ दिनके लिए मैं देश जा रहा हूं।" बस, इतना कहकर वह बारासत पहुंचा। अनुकूल बाबू उस समय बारासतमें मुन्सिफ थे।

अनुकूलके और-कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ। उनकी स्त्री अब भी उस बच्चेके शोकमें आँसू बहाया करती हैं।

एक दिन, शामके वक्त अनुकूल बाबू कचहरीसे लौटकर आराम कर रहे थे; और गृहिणी किसी साधू-महात्मासे सन्तानकी कामनासे काफी कीमत देकर कोई जड़ी और आशीर्वाद खरीद रही थीं। इतनेमें आँगनसे आवाज आई—"जय हो माजीकी!"

बाबू साहब बोले—"कौन है ?"

रायचरणने आकर नमस्कार किया, बोला—"मैं हूं, रायचरण।"

बूढ़ेको देखकर अनुकूलका हृदय पसीज गया। उसकी मौजूदा हालतके बारेमें हजारों सवाल पूछ डाले। और फिर उन्होंने उसे फिरसे कामपर बहाल करनेकी इच्छा प्रकट की।

रायचरणने सूखी हँसी हँसकर कहा—"मैं तो सिर्फ माजीकी असीस लेने आया हूँ।"

अनुकूल बाबू उसे अपने साथ भीतर ले गये। पर उसकी 'माजी' ने प्रसन्नतासे उसका आदर नहीं किया; पर उसपर उसने कुछ ध्यान न देते हुए हाथ जोड़कर कहा—"माजी, मैंने ही आपका लड़का चुराया था; पद्माने नहीं, और किसीने भी नहीं, उसका चुरानेवाला मैं ही हूं कृतघ्नी पापी—"

अनुकूल कह उठे—"क्या कह रहा है तू! कहाँ है वह ?"

"जी, मेरे ही पास है। मैं परसों यहाँ पहुंचा दूंगा।"

उस दिन रविवार था; कचहरीकी छुट्टी थी। सवेरेसे स्त्री-पुरुष दोनों जने बड़ी उत्सुकतासे रायचरणके आनेकी राह देख रहे थे। दस बजे फुलनाको साथ लेकर रायचरण हाजिर हुआ।

अनुकूलकी स्त्रीने लड़केसे कुछ भी पूछताछ नहीं की और न कुछ सोचा-विचारा ही; वे चटसे उसे गोदमें बिठाकर, छातीसे चिपटाकर, मुंह चूमकर, अतृप्त नयनोंसे उसका मुखड़ा देखकर, कभी रोती और कभी हँसती हुई व्याकुल हो उठीं। दरअसल लड़का देखनेमें बहुत अच्छा था; पहनावेमें, रहन-सहनमें

गरीबीका उसमें कोई लक्षण ही नहीं था। मुँहपर अत्यन्त प्रियदर्शन विनीत सलज्ज भाव देखकर अनुकूलके हृदयमें भी सहसा स्नेह उमड़ आया।

फिर भी उन्होंने दृढ़ताके साथ पूछा—"कोई सबूत है ?"

रायचरणने कहा—"ऐसे कामका सबूत क्या होगा बाबू साहब ? मैंने जो आपका लड़का चुराया था, इस बातको सिर्फ मैं जानता हूं या भगवान ही जानते हैं ; संसारमें तीसरा कोई नहीं जानता।"

अनुकूलने सोच समझकर निश्चय किया कि लड़केको पाते ही उनकी स्त्रीने जिस आग्रहके साथ उसे अपना लिया है, उसे देखते हुए अब सबूत चाहना कुछ मानी नहीं रखता ; जैसे भी बने, विश्वास करना ही अच्छा है। इसके सिवा, और भी एक बात है, रायचरणको ऐसा लड़का मिल भी कहाँसे सकता है ? दूसरे, इतना पुराना बूढ़ा नौकर बिला-वजह उन्हें धोखा देगा ही क्यों ?

लड़केसे भी बातचीत करनेपर मालूम हुआ कि बचपनसे ही वह रायचरणके साथ है ; और अब तक उसे ही वह पिता समझता था ; पर रायचरणने कभी भी उसके साथ पिताके समान व्यवहार नहीं किया, बल्कि वह नौकर-जैसा ही बरताव करता रहा है।

अनुकूलने मनसे सन्देह दूर करके कहा—"लेकिन रायचरण, तू अब हम लोगोंकी परछाँही भी न छू सकेगा।"

रायचरणने हाथ जोड़कर कहा—"मालिक साहब, इस बुढ़ापेमें अब मैं कहाँ जाऊँगा ?"

मालिकिनने कहा—"नहीं नहीं, रहने दो। लल्लू मेरा खुश बना रहे। उसे मैं माफ करती हूं।"

न्यायपरायण अनुकूलने कहा—"उसने ऐसा जबरदस्त कसूर किया है कि उसे माफ नहीं किया जा सकता।"

रायचरणने अनुकूलके पैर पकड़कर कहा—"मैंने नहीं किया, भगवानने किया है।"

अपना पाप ईश्वरके सिर मढ़नेकी कोशिश करते देख अनुकूल और भी ज्यादा नाराज हो गये; बोले—"जिसने ऐसा विश्वासघातका काम किया है, उसपर अब फिर विश्वास करना ठीक नहीं।"

रायचरणने मालिकके पैर छोड़कर कहा—"ऐसा मैं नहीं हूं मालिक!"

"तो कौन है?

"मेरी तकदीर!"

पर इस तरहकी कैफियतसे किसी शिक्षित आदमीको सन्तोष नहीं हो सकता।

रायचरणने कहा—"संसारमें मेरा और कोई भी नहीं है।"

फुलनाने जब देखा कि वह मुन्सिफका लड़का है, रायचरणने अब तक उसे चुरा रखा था और अपना लड़का बताकर वह उसका अपमान करता रहा है, तब उसे भी मन-ही-मन कुछ गुस्सा आया; लेकिन फिर भी उसने उदारताके साथ पितासे कहा—"पिताजी, इसे माफ कर दो। घरमें अगर नहीं रखना चाहते, तो इसके लिए कुछ माहवारी बाँध दो।"

इसके बाद रायचरणने मुँहसे कुछ भी न कहकर एक बार अपने इकलौते बेटेका अच्छी तरह मुँह देखा, सबको प्रणाम किया, और फिर दरवाजेसे बाहर निकलकर संसारके असंख्य आदमियोंमें जाकर बिला गया। महीनेके अन्तमें अनुकूलने जब उसके देशके पतेसे कुछ रुपये भेजे, तो मनीआर्डर वापस आ गया। वहाँ कोई था ही नहीं।

जिन्दा और मुरदा

रानीहाटके जमींदार बाबू शारदाशङ्करके घरकी बेचारी विधवा छोटी बहूके मायकेमें कोई न था ; एक-एक करके सभी मर चुके थे। ससुरालमें भी ठीक अपना कहनेको कोई नहीं है ; न पति है, न पुत्र। एक जेठौत है, शारदाशङ्करका छोटा लड़का ; वही उसकी आँखोंका तारा है। उस बच्चेके पैदा होनेके बाद उसकी माको बड़ी सख़्त बीमारीने घेर लिया था, उसमें वह बहुत दिनों तक तकलीफ पाती रही, इसलिए उसकी चाची विधवा कादम्बिनीने ही उसे पाल-पनासकर बड़ा किया है। कोई पराये लड़केको पाल-पनासकर बड़ा करे तो उसपर हृदयका खिंचाव और स्नेह-ममता मानो और भी बढ़ जाती है ; कारण उसपर उसका कोई कानूनी हक नहीं रहता। जहाँ सामाजिक अधिकार बिलकुल न हो, सिर्फ स्नेहका ही हक हो, वहाँ बेचारा अकेला स्नेह समाजके सामने अपने हकको किसी दलीलके

बूतेपर साबित नहीं कर सकता ; और करना भी चाहता ; बल्कि वह तो अपने उस अनिश्चित हृदयके धनको दूने आवेग और उससे भी ज्यादा व्याकुलताके साथ सिर्फ चाहने ही लगता है।

विधवा कादम्बिनीने, अपने सारे रुके हुए स्नेहको इस छोटेसे बच्चेपर सींचकर, एक दिन सावनकी रातको एकाएक इस लोकसे कूच कर दिया। अचानक न-जाने कैसे उसके हृदयकी धुकधुकी बन्द हो गई। दुनियामें समय सब जगह ज्योंका त्यों चलने लगा, सिर्फ उस स्नेहपूर्ण छोटेसे कोमल हृदयके भीतर समयकी घड़ीके पुरजे हमेशाके लिए बन्द हो गये।

पीछे कहीं पुलिसका अड़ंगा न लग जाय, इस डरसे ज्यादा आडम्बर न बढ़ाकर जमींदारके चार ब्राह्मण कर्मचारी जल्द ही अरथीको श्मशान ले गये।

रानीहाटका मसान गाँवसे बहुत दूर था। तालाबके किनारे एक झोंपड़ी है और उसके पास ही एक-बड़ा भारी बड़का पेड़। चारों तरफ मैदान-ही-मैदान नजर आता है, और कुछ नहीं। पहले यहाँ नदी बहती थी, अब वह बिलकुल सूख गई है। उस सूखी नदीका कुछ हिस्सा खोदकर मसानका तालाब बना दिया गया है। अब उस तालाबको ही यहाँके लोग उस नदीकी जगह मानते हैं।

अरथीको झोंपड़ीके भीतर रखकर चारों जने चिताके लिए आनेवाली लकड़ियोंका इन्तजार करने लगे। बहुत देर तक बैठे-बैठे जब बिलकुल उकता गये, तो उनमेंसे निताई और गुरुचरण यह देखनेके लिए चल दिये कि लकड़ी आनेमें इतनी

देर क्यों हो रही है ? और बाकीके दो बिधू और बनमाली अरथीके पास बैठे रहे।

सावनकी अँधेरी रात थी। आकाशमें चारों ओर बादल ही बादल मड़रा रहे हैं, कहीं एक तारा तक नहीं दिखाई देता ; अँधेरी झोंपड़ीमें दोनों जने चुपचाप बैठे हुए हैं। एकके दुपट्टेमें दिआसलाई और मोमबत्ती बँधी हुई थी। बरसातसे सर्द जानेके कारण, दिआसलाई बहुत जलाई, पर जली नहीं। उसपर साथमें जो लालटेन थी, वह भी बुझ गई।

बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहनेके बाद एकने कहा—"भइया, एक चिलम तम्बाकू कहींसे मिल जाती तो बड़ा अच्छा होता। जल्दीमें कुछ ला भी तो नहीं सके।"

दूसरेने कहा—"मैं चटसे जाकर एक दौड़में सब ला सकता हूँ।"

बनमालीके भागनेके इरादेको ताड़कर बिधूने कहा—"जरा सूरत तो देखूँ ! तुम जाओ मौज उड़ाने और मैं यहाँ अकेला बैठा रहूं, क्यों ?"

इसके बाद बातचीत बन्द हो गई। पाँच मिनट एक घंटेके बराबर मालूम होने लगा। जो लकड़ी लाने गये थे, उन्हें ये मन-ही-मन गालियाँ देने लगे। इनके मनका यह सन्देह कि वे दोनों जरूर कहीं आरामसे बैठे मजेमें तम्बाकू पीते और गप्पें मारते होंगे, बढ़ता ही गया।

आस-पास कहीं भी कोई आहट नहीं ; सिर्फ तालाबके किनारेसे लगातार झींगुरोंकी झनकार और मेढ़कोंकी टर्रटर्र

सुनाई दे रही है। इतनेमें कुछ ऐसा लगा कि जैसे खाट ※ जरा-कुछ हिली हो, मुरदेने मानो करवट बदला हो।

विधू और वनमाली दोनोंके दोनों कांप उठे और राम नाम जपने लगे। इतनेमें झोंपड़ीमें यकायक एक गहरी उसासी-सी सुन पड़ी। विधू और वनमाली उसी दम उछलकर झोंपड़ीसे बाहर निकल आये; और सीधे गाँवकी तरफ भाग खड़े हुए।

करीब डेढ़ कोस रास्ता तय करनेके बाद, उन्होंने देखा कि उनके बाकी दोनों साथी लालटेन हाथमें लिये वापस आ रहे हैं। दरअसल वे तम्बाकू ही पी रहे थे। लकड़ीके बारेमें उन्हें कुछ भी पता नहीं था; फिर भी आकर समाचार दिया—"पेड़ काटकर लकड़ी चिरवाई जा रही है, बस अब आने ही वाली समझो!" जवाबमें विधू और वनमालीने झोंपड़ीका सारा किस्सा कह सुनाया। निताई और गुरुचरणको इसपर विश्वास न हुआ; उन दोनोंने बात जड़से ही उड़ा दी; और अरथीको अकेली पड़ी छोड़ आनेकी बेवकूफीपर दोनोंको खूब फटकारा भी।

और फिर फालतू देर न करके चारों जने जल्द ही मसानकी उसी झोंपड़ीमें पहुंचे। भीतर जाकर देखा तो, मुरदेका पता नहीं, खाली खटिया पड़ी हुई है!

चारोंके चारों एक दूसरेका मुंह ताकने लगे। सन्देह हुआ, कहीं सियार न ले गया हो? पर वहाँ तो ऊपरका कपड़ा तक नहीं है। पता लगाते-लगाते बाहर निकलकर देखा तो, झोंपड़ीके

※ बंगालमें मुरदेको बांस और नारियलकी रस्सीसे बनी खाटपर धरके ले जाते हैं, और उसे बाँधा भी नहीं जाता।

दरवाजेके पास जो थोड़ी-सी कीच जम गई थी उसपर स्त्रीके-से छोटे-छोटे पाँवोंके ताजे निशान बने हुए हैं। सोचने लगे कि शारदाशंकर बाबू कोई मामूली आदमी नहीं हैं; उन्हें इस तरहका भूतका किस्सा सुनाकर सहसा उनसे किसी अच्छे नतीजेकी उम्मीद करना बिलकुल असम्भव है। अतः चारों आदमियोंने खूब सोच-विचारकर अन्तमें यही तय किया कि उनसे कह दिया जाय कि 'दाहकर्म हो गया', बस, इसीमें खैर है; वरना सबकी जानको तूमत हो जायगी।

सवेरेकी होनमें जो लकड़ियाँ लेकर आये, उन्हें समाचार मिला कि 'देर होती देख रात ही में सब काम खतम कर दिया गया; झोंपड़ीमें लकड़ियाँ मौजूद थीं।' इस विषयमें जल्दी किसीको सन्देह भी नहीं हो सकता; क्योंकि मुरदा कोई ऐसी कीमती चीज नहीं कि जिसे कोई धोखा देकर उड़ा ले जायगा।

२

सभी जानते हैं कि कभी-कभी बीमार शरीरमें जीवनका जब कोई लक्षण ही नहीं पाया जाता, तब भी बहुधा उसमें प्राण मौजूद रहते हैं; और यथासमय फिर उस मुरदा-जैसे शरीरमें साँस चलने लगती है। कादम्बिनी भी असलमें मरी नहीं थी, अचानक किसी वजहसे उसके दिलकी धड़कन बन्द हो गई थी।

जब वह सचेतन हो उठी, तो देखा कि उसके चारों तरफ घोर अन्धकार-ही-अन्धकार है। हमेशा जहाँ वह सोती थी, उसे मालूम हुआ कि यह वह जगह नहीं है। एक बार उसने

पुकारा—"जीजी !' पर अँधेरे घरमें किसीने कुछ जवाब नहीं दिया। डरते-डरते वह उठकर बैठ गई ; और कुछ देर पहलेकी अपने मरनेकी बात याद आते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये। उ:फ्, अचानक छातीके भीतर कैसा जबरदस्त दर्द उठा था, दम घुटने लगा था। उसकी जिठानी घरके एक कोनेमें बैठी अँगीठीपर बच्चेके लिए दूध गरम कर रही थी। कादम्बिनीसे मारे दर्दके खड़ा न रहा गया, वह पछाड़ खाकर बिछौनेपर गिर पड़ी। उसने रुँधे हुए स्वरसे कहा—'जीजी, जरा लल्लाको ला दो मेरे पास, मेरा जी घबरा रहा है।" उसके बाद उसकी आँखोंके आगे सब काला स्याह हो गया, मानो किसी लिखी हुई कापीपर स्याही-भरी दावात उलट पड़ी हो। कादम्बिनीकी सारी स्मृति और चेतना, विश्व-ग्रन्थकी सारी लिखावट, पल-भरमें एकाकार हो गई। बेचारी विधवाको इतनी भी सुध नहीं कि उसके प्यारे लल्लाने उसे एक बार, आखिरी वक्त, स्नेह और ममतासे भरे अपने मीठे गलेसे "चाची" कहकर पुकरा था या नहीं ; उसे इतनी भी याद नहीं कि वह अपनी इस अनन्त और अज्ञात मरण-यात्राकी लम्बी सफरके लिए अपनी चिर-परिचित पृथ्वीसे उस अन्तिम स्नेहके तोशे "चाची" को साथ लाई है या नहीं।

पहले तो उसे ऐसा लगा कि यमपुरी शायद ऐसी ही सुनसान और चिर-अन्धकारमय होती होगी। वहाँ कुछ भी देखनेको नहीं, सुननेको नहीं, काम नहीं, काज नहीं, सिर्फ हमेशा इसी तरह उठकर जागकर अँधेरेमें बैठे रहना पड़ता है।

उसके बाद, जब खुले हुए दरवाजेसे अचानक बरसाती ठंडी हवाका एक झोका आया और मेढ़कोंकी टर्रटर्र कानोंमें पड़ी, तो उसी क्षण उसके मनमें अपने छोटेसे जीवनकी, बचपनसे लेकर अब तककी सारी-की-सारी वर्षाऋतुओंकी याद जाग उठी; और फिर अपने नीचे उसे जमीनके संस्पर्शका अनुभव हुआ। इतनेमें एक बार बिजली चमक उठी; और उसके क्षणिक उजालेमें सामने तालाब, बरगदका पेड़, दूर तक फैला हुआ मैदान और पेड़ ही-पेड़ नजर आये। याद उठ आई, कभी-कभी पुण्य-तिथिके दिन इस तालाबके किनारे आकर उसने स्नान किया है; और तब इसी मसानमें मुरदा देखकर मृत्यु उसे कैसी भयानक जान पड़ती थी!

पहले तो उसके मनमें आई कि घर लौट चले। फिर सोचने लगी कि 'मैं जिन्दा नहीं हूं, मुझे घरमें कोई घुसने क्यों देगा? वहाँ जानेसे घरवालोंका अमङ्गल जो होगा। जीव-राज्यसे मुझे तो देश-निकाला मिल चुका है; मैं तो अब अपनी प्रेतात्मा हूं!"

अगर ऐसा नहीं हुआ, तो वह इस अँधेरी रातमें शारदाशङ्करके सुरक्षित अन्तःपुरसे इस दुर्गम श्मशानमें आई कैसे? अब भी अगर उसका दाहकर्म खतम नहीं हुआ, तो दाग देनेवाले आदमी गये कहाँ? शारदाशङ्करके प्रकाशमय मकानमें उसे अपने मरनेकी आखिरी घड़ियोंकी याद आ गई; बस, उसके बाद ही गाँवसे बहुत दूर इस सुनसान अन्धकारमय श्मशानमें अपनेको अकेली देखकर उसने समझ लिया कि वह अब इस दुनियाके

आदमियोंकी कोई भी नहीं है। फिर वह मन-ही-मन सोचने लगी 'मैं अब प्रेतात्मा हूं, सबके लिए खौफनाक हूं, अकल्याण-कारिणी हूं ; अब मुझसे किसीका हित नहीं हो सकता, सबका अहित ही होगा।'

मनमें इन सब बातोंका खयाल आते ही उसे मालूम हुआ कि उसके चारों ओरसे सांसारिक कायदे-कानूनके सारे बन्धन मानो टूटकर गिर पड़े हैं। मानो अब उसमें अद्भुत शक्ति आ गई है, असीम स्वाधीनता आ गई है ; अब वह जहां चाहे जा सकती है, जो चाहे कर सकती है ! इस तरहके अभूतपूर्व और विचित्र भाव उसके मनमें आते ही वह उन्मत्त-सी हो उठी, और सहसा आँधीकी तरह झोंपड़ीसे बाहर निकलकर अन्धकारमय श्मशानके ऊपरसे सन्नाती हुई चल दी। उसके मनमें लज्जा-भय-चिन्ताका लेशमात्र भी न रहा।

बहुत देर तक चलते-चलते उसके पैर थक गये, देहमें भी थकावट आने लगी। मैदानपर मैदान पार करती गई, पर उनका छोर न आया। बीच-बीचमें धानके खेत थे, कहीं-कहीं घुटुअन पानी भी जमा था। जब पौ फटी, कुछ-कुछ सवेरेका उजाला दिखाई दिया, तब एक गाँवके किनारेकी बस्तीमें पेड़ोंपर चिड़ियोंकी चुहचुहाहट सुनाई देने लगी।

तब उसे कैसा डर-सा मालूम होने लगा। दुनियाके साथ, जिन्दा आदमियोंके साथ अब उसका कैसा नया सम्बन्ध हो गया है, उसकी उसे कोई खबर तक नहीं। जब तक वह मैदानमें थी, श्मशानमें थी, सावनकी रातके अँधेरेमें थी,

तब तक मानो वह निर्भय थी और अपने राज्यमें थी। दिनके उजालेमें आदमियोंकी बस्ती उसे बहुत ही डरावनी जगह मालूम होने लगी। आदमी भूतसे डरता है, और भूत आदमीसे ; मृत्यु-नदीके दोनों किनारोंपर दोनोंका निवास है।

३

कादम्बिनीके कपड़े कीचसे सन रहे थे, अद्भुत भेष था उसका ; और रात-भर जागनेसे वह पागल-सी हो रही थी। चेहरा उसका ऐसा लग रहा था कि आदमी उसे देखकर डर सकते थे ; और लड़के तो शायद उससे दूर भागकर उसपर ढेले भी फेंकते। गनीमत हुई कि एक राह-चलते भले आदमीने उसे सबसे पहले इस दशामें देख लिया। उसने पास आकर पूछा—"बेटी, तुम किसी भले घरकी कुलवधू जान पड़ती हो, तुम इस वेशमें अकेली कहाँ जा रही हो ?"

कादम्बिनीने पहले तो कुछ जवाब नहीं दिया, और एकटक उसके मुंहकी तरफ ताकती रही। यकायक उसे कुछ जवाब सूझ न पड़ा। वह संसारमें मौजूद है, किसी भले घरकी कुलवधू-सी जान जान पड़ती है, राह-चलता पथिक उससे कुछ पूछ रहा है, ये सब बातें उसे अनहोनी-सी जान पड़ने लगीं।

पथिकने उससे फिर पूछा—"चलो, बेटी, मैं तुम्हें घर पहुंचा दूं। तुम्हारा घर कहाँ है, मुझे बताओ ?"

कादम्बिनी सोचने लगी, ससुराल लौटना तो अब फिजूल है, वहाँ स्थान कहाँ ? और मायकेमें है ही कौन ? तब उसे अपनी बचपनकी एक सहेलीकी याद आई। उसकी सहेली

योगमायाके साथ यद्यपि उसका छुटपनसे ही विछोह हो गया था, फिर भी बीच-बीचमें उससे चिट्ठी-पत्री चलती रहती थी। कभी-कभी बड़े जोरोंसे प्यारकी लड़ाई भी चलती। कादम्बिनी दिखाना चाहती कि उसका प्रेम जोरदार है, वह उसे बहुत चाहती है; और योगमाया जताना चाहती कि जितना वह चाहती है उतना सखीकी तरफसे उसे प्रेम नहीं मिलता। दोनों ही इस बातका दावा रखती थीं कि किसी मौकेपर एक बार दोनोंका मिलन हो जाय, तो कोई भी किसीको घड़ी-भरके लिए आँख-ओझल न होने दे।

कादम्बिनीने उस भले आदमीसे कहा—"निशन्दापुरमें मुझे श्रीपति बाबूके घर पहुंचा दीजिये।"

वह पथिक कलकत्ता जा रहा था; निशिन्दापुर यद्यपि पास न था, फिर भी उसके रास्तेमें ही पड़ता था। उसने खुद इन्तजाम करके कादम्बिनीको श्रीपति बाबूके घर पहुंचा दिया।

दोनों सखियोंमें मिलाप हुआ। पहले पहचाननेमें कुछ देर लगी, फिर बादमें बचपनका सादृश्य दोनोंकी आँखोंमें क्रमशः परिस्फुटित हो उठा।

योगमायाने कहा—"आज मेरे बड़े भाग्य हैं! सचमुच, किसी तरह तुम्हें मैं इतनी जल्दी इतनी आसानीसे देख सकूंगी इसकी मुझे सपनेमें भी आशा नहीं थी! पर बहन, ऐसे कैसे चली आईं, सो तो बताओ? ससुरालवालोंने तुम्हें यहाँ आने कैसे दिया?"

कादम्बिनी पहले तो चुप रही; फिर अन्तमें बोली—"बहन,

ससुरालकी बात मुझसे न पूछो। मुझे तो तुम अपने यहाँ दासीकी तरह एक कोनेमें पड़ी रहने देना, मैं तुम्हारा सब काम कर दिया करूँगी।"

योगमायाने कहा—"बहन, तुम कैसी बातें कर रही हो! दासीकी तरह क्यों रहोगी तुम? तुम तो मेरी सबसे ज्यादा प्यारकी सहेली हो, तुम मेरी···" इत्यादि।

इतनेमें श्रीपति भीतर आ गये। कादम्बिनी कुछ देर तो उनके मुँहकी ओर देखती रही, फिर धीरे-धीरे कमरेसे बाहर निकल गई। उसने न तो घूँघट खींचा, और न किसी तरहका संकोच या शरमका भाव ही दिखाया।

कहीं उसकी सहेलीके विरुद्ध श्रीपति कुछ खयाल न कर बैठें, इस ख्यालसे योगमायाने बड़ी फुरतीके साथ पतिको उसके बारेमें तरह-तरहसे समझाना शुरू किया। पर इतना कम समझाना पड़ा और श्रीपतिने इतनी जल्दी योगमायाकी सब बातें मान लीं कि योगमाया अपने मनमें विशेष सन्तुष्ट न हो सकी।

कादम्बिनी सहेलीके घर आई तो सही, पर सहेलीसे ज्यादा हिल-मिल न सकी, उसके अपने खयालसे बीचमें मौतकी एक दीवार सी खड़ी रही। जिसके मनमें अपने सम्बन्धमें हमेशा एक तरहका सन्देह और सजग-भाव-सा बना रहे, उसके लिए दूसरोंसे हिलना-मिलना कठिन हो जाता है। कादम्बिनी योगमायाके मुंहकी ओर देखती और न-जाने क्या-क्या सोचती रहती है। उसे ऐसा लगने लगा कि मानो उसकी सहेली अपने पति और घर-गृहस्थीके साथ उससे बहुत दूर किसी और ही

दुनियामें रहती है। मानो उस दुनियाके लोग स्नेह-ममता और कर्त्तव्योंसे घिरे हुए हैं, और वह है शून्य छाया! उसकी सखी मानो अस्तित्वके देशमें रहती है और वह लटक रही है अनन्तके बीच। योगमायाका जी भी न-जाने कैसा हो गया; कादम्बिनीका जीवन-रहस्य उसकी कुछ समझमें नहीं आया। स्त्रियोंको रहस्य नहीं सुहाता; कारण, अनिश्चितको लेकर कविता की जा सकती है, वीरता दिखाई जा सकती है, पाण्डित्य प्रगट किया जा सकता है, और सब-कुछ किया जा सकता है, लेकिन घर-गृहस्थी नहीं की जा सकती। इसीलिए स्त्रियाँ जिसे समझ नहीं पातीं, उसके अस्तित्वको नष्ट करके या तो उससे सब तरहका सम्बन्ध ही तोड़ लेती हैं, नहीं तो फिर उसे अपने हाथसे नया रूप देकर अपने काम आने-लायक चीज बना लेती हैं; और अगर इन दोनोंमेंसे एक भी बात न हो सकी, तो फिर उसपर खूब खीझती और झुँझलाती रहती हैं।

और हुआ भी यही; कादम्बिनी ज्यों-ज्यों पहेलीकी तरह दुर्बोध्य होने लगी, त्यों-त्यों योगमाया मन-ही-मन उससे खीझने लगी। वह सोचने लगी कि यह कौनसी बला सिरपर आ पड़ी? इसके सिवा दूसरी एक और आफत है; वह यह कि कादम्बिनी खुद अपनेसे डरती है! क्या करे, अपने पाससे आप वह किसी तरह भाग नहीं सकती। जो भूतसे डरते हैं उन्हें अपने पीछे डर जान पड़ता है; जहाँ दृष्टि नहीं पहुंचती, वहीं डर है। पर कादम्बिनीको अपनेमें ही सबसे ज्यादा डर है, बाहर नहीं। यही वजह है कि किसी-किसी दिन दोपहरको वह सूनी कोठरीमें

यकायक चिल्ला उठती है ; और रातको दीआके उजालेमें अपनी परछाँई देखकर उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

उसकी यह हालत देखकर घर-भरके लोगोंके मनमें एक तरहका डर पैदा हो गया। नौकर-नौकरानी और योगमाया तकको जहाँ-तहाँ जब-तब भूत दिखाई लेने लगा।

एक दिन ऐसा हुआ कि कादम्बिनी आधी रातको अपनी कोठरीमेंसे निकलकर रोती हुई सीधी योगमायाके कमरेके दरवाजेके पास आ खड़ी हुई ; और बोली—"जीजी, जीजी, तुम्हारे पैरों पड़ती हूं, मुझे अकेली मत छोड़ा करो।"

योगमाया जैसे डरी, वैसे गुस्सा भी उसे खूब आया। मनमें आई कि उसी घड़ी उसे निकाल बाहर करे। पर श्रीपतिको दया आ गई ; उन्होंने बड़ी मुश्किलसे उसे शान्त करके बगलकी कोठरीमें उसके रहनेका इन्तजाम कर दिया।

दूसरे दिन बेवक्त अन्तःपुरमें श्रीपति तलब किये गये। योगमायाने उन्हें यकायक डाटना शुरू कर दिया—"क्यों जी, तुम हो कैसे आदमी ? एक औरत अपनी सुसराल छोड़कर महीने-भरसे तुम्हारे घरपर रह रही है, जानेका नाम तक नहीं लेती, और तुम्हारे मुँहसे ऊँह तक नहीं निकलती! आखिर बात क्या है ? तुम क्या चाहते हो, कमसे कम मालूम तो पड़े। छि छि, तुम मरदोंकी जात ही ऐसी है !"

वास्तवमें साधारण स्त्री-जातिपर पुरुषोंका एक प्रकारका बिना विचारका पक्षपात होता है ; और उसके लिए स्त्रियाँ ही उन्हें अधिक अपराधी साबित करती हैं। असहाय किन्तु सुन्दरी

कादम्बिनीपर श्रीपतिकी करुणा उचित मात्रासे कुछ ज्यादा थी, और इस बातके विरुद्ध वे योगमायाकी देह छूकर कसम खानेको भी तैयार रहते ; मगर फिर भी, उनके आचरणोंसे योगमायाकी धारणा ही पुष्ट होती थी।

वे मन-ही-मन सोचा करते कि 'ससुरालवाले इस पुत्र-हीन विधवाके साथ जरूर निर्दय व्यवहार करते होंगे, इसीसे बेचारीने वहाँ बहुत दुःख पानेके बाद हमारे घरमें आकर आश्रय लिया है। जब कि इसके मा-बाप कोई भी नहीं है, तो मैं इसे कैसे निकाल दूँ ?' यही समझकर अब तक उन्होंने कादम्बिनोके विषयमें कुछ जाँच-पड़ताल नहीं की ; और कादम्बिनीसे भी ऐसी बातें पूछकर उसका जी दुखाना उचित नहीं समझा।

मगर उनकी वहाँ सुनता कौन है ? उनकी स्त्रीने उनकी निश्चेष्ट कर्तव्य-बुद्धिपर तरह-तरहसे चोट करना शुरू कर दिया ; और तब, इस बातको वे अच्छी तरह समझ गये कि कम-से-कम अपने घरमें शान्ति बनाये रखनेके लिए कादम्बिनीकी ससुरालमें खबर पहुंचाना जरूरी है। अन्तमें निश्चय किया कि अचानक चिट्ठी पहुंचनेसे उसका असर शायद अच्छा न भी हो, इसलिए बेहतर है कि खुद ही रानीहाट जाकर मामलेको समझ आवें।

श्रीपति तो चले गये रानीहाट ; और इधर योगमायाने आकर कादम्बिनीसे कहा—"बहन, अब यहाँ तुम्हारा रहना अच्छा नहीं मालूम देता। लोग क्या कहेंगे !"

कादम्बिनीने गम्भीर दृष्टिसे योगमायाके मुंहकी ओर देखते हुए कहा—"लोगोंके साथ मेरा ताल्लुक ही क्या है ?"

जवाब सुनकर योगमाया दंग रह गई। उसने गुस्सेमें आकर कहा—"तुम्हारा न सही, मेरा तो है! हम पराये घरकी बहू-बेटीको कैसे क्या कहकर अपने यहाँ रोक रक्खें!"

कादम्बिनीने कहा—"मेरी ससुराल है कहाँ?"

योगमायाने अपने मनमें कहा—'मर कलमुँही, कहती क्या है?'

कदम्बिनीने धीरे-धीरे कहा—"मैं क्या तुम लोगोंकी कोई हूं? मैं क्या इस दुनियाकी हूं? तुमलोग हँसते हो, खेलते हो, प्यार करते हो, सब-कोई अपने-अपनेके साथ आनन्दसे रहते हो, मैं तो सिर्फ देखती-भर हूं। तुम लोग आदमी हो, मैं हूं छाया! समझमें नहीं आता, भगवानने मुझे तुमलोगोंकी गृहस्थीके बीच क्यों डाल रक्खा है! तुम लोग भी डरते हो, कहीं तुम्हारे हँसी-खेलमें मैं अमङ्गल न ला दूं; और मैं भी समझ नहीं पाती कि तुमलोगोंसे मेरा क्या सम्बन्ध है? पर भगवान ही ने जब हमलोगोंके लिए कोई अलहदा जगह मुकर्रर नहीं की, तो क्या किया जाय? इसीसे बन्धन टूट जानेपर भी तुम्हींलोगोंके आस-पास घूम फिर रही हूँ।"

ये बातें उसने योगमायाके मुंहकी तरफ देखते हुए इस ढंगसे कहीं कि योगमाया न-जाने क्या-का-क्या समझ गई! असल बातको शायद वह समझ ही न सकी; और न कुछ उत्तर ही दे सकी। आगे वह कुछ पूछ भी न सकी। बहुत ही भारग्रस्त गम्भीर होकर वहाँसे चली गई।

४

रातके करीब दस बजे होंगे, श्रीपति रानीहाटसे लौटे हैं। खूब मूसलधार वर्षा हो रही थी। उसके लगातार झरझर शब्दसे मालूम होता है कि न आज वर्षा खतम होगी, न रात।

योगमायाने पूछा—"क्या हुआ?"

श्रीपतिने कहा—"बहुत-सी बातें हैं। पीछे बताऊँगा।" यह कहते हुए उन्होंने कपड़े उतारे, हाथ-मुँह धोया, खाया-पिया, और फिर तम्बाकू पीकर सोने चले गये। बड़े चिन्तित-से मालूम हुए।

योगमाया बहुत देरसे अपने कुतूहलको दबाये बैठी थी; पलंगपर पहुंचते ही पूछने लगी—"हाँ, बताओ अब, क्या हुआ?"

श्रीपतिने कहा—"जरूर तुमने गलती की है।"

सुनते ही योगमायाको जरा गुस्सा-सा आ गया। गलती तो स्त्रियोंसे कभी हो ही नहीं सकती; और अगर हो भी जाय तो किसी बुद्धिमान पुरुषको उसका जिक्र नहीं करना चाहिए, उसे अपने ऊपर ले लेना ही ठीक है। योगमायाने कुछ गरम होकर कहा—"कैसे, जरा मैं भी तो सुनूँ?"

श्रीपतिने कहा—"जिस स्त्रीको तुमने अपने घरमें रख रक्खा है, वह तुम्हारी कादम्बिनी नहीं है!"

ऐसी बात सुनकर सहज ही क्रोध आ सकता है; और खासकर अपने पतिके मुंहसे सुननेपर तो कहना ही क्या! योगमायाने कहा—"अपनी सहेलीको मैं नहीं पहचानती, तुम्हारे पहचनवानेपर पहचानूँगी, क्यों? तुम्हारी बात सुनकर हँसी भी आती है और गुस्सा भी। बात करनेका ढंग तो देखो!"

श्रीपतिने समझाया कि यहाँ बात कहनेके ढंगपर कोई बहस नहीं हो रही, सबूत देखना चाहिए। योगमायाकी सहेली जो कादम्बिनी थी, वह तो कभीकी मर चुकी! इसमें रत्ती-भर भी सन्देह नहीं।

योगमायाने कहा—"जरा इनकी बातें तो सुनो! जरूर तुम कुछ-न-कुछ गलती कर आये हो। न-जाने कहाँके मारे कहाँ पहुंचे होगे, और क्या सुनते क्या सुना होगा; कोई ठीक है तुम्हारा! तुम्हें खुद जानेको किसने कहा था? एक चिट्ठी डालकर पूछ लेते, तो सब मामला ही साफ हो जाता।"

अपनी कार्य-कुशलतापर स्त्रीका विश्वास न जमते देख श्रीपति बड़े दुःखित हुए; और विस्तृत रूपसे तमाम प्रमाणोंका प्रयोग करने लगे; पर नतीजा कुछ न निकला। दोनों ओरसे 'हाँ' 'ना' होते-करते रातके बारह बज गये।

यद्यपि कादम्बिनीको इसी घड़ी घरसे निकाल बाहर करनेमें पति-पत्नीमें कोई भी मतभेद न था; कारण, श्रीपति समझते थे कि उनके अतिथिने झूठा परिचय देकर उनकी स्त्रीको धोखा दिया है और योगमायाको विश्वास था कि वह कुलमें दाग लगाकर निकल आई है; फिर भी मौजूदा बहसमें दोनोंमेंसे कोई भी हार माननेको तैयार नहीं। धीरे-धीरे दोनोंका कण्ठस्वर ऊँचा हो चला; और दोनों ही इस बातको भूल गये कि बगलकी कोठरीमें कादम्बिनी सो रही है।

एक कहता—"अच्छी आफतमें जान फँसी! मैं अपने कानोंसे सुन आया हूँ, तो भी तुम नहीं मानतीं!"

दूसरा दृढ़ताके साथ कहता—"मान कैसे लूँ, मैं अपनी आँखोंसे देख रही हूँ जो !"

अन्तमें योगमायाने पूछा—"अच्छा, कादम्बिनी कब मरी है, बताओ ?"

उसने मन-ही-मन सोचा कि वह कादम्बिनीकी किसी एक चिट्ठीकी तारीखके साथ उसके मरनेकी तारीखमें फर्क दिखाकर पतिकी गलती साबित कर देगी।

पर श्रीपतिने जो तारीख बताई, उससे दोनोंने हिसाब लगाकर देखा कि जिस दिन शामको कादम्बिनी उनके घर आई थी, उस दिनको तारीख ठीक उससे एक दिन पहलेकी पड़ती है ! सुनते ही यकायक योगमायाकी छाती काँप उठी ; और श्रीपतिके मनमें भी दहशत बैठ गई।

इतनेमें कमरेका दरवाजा खुल गया ; और बरसाती हवाके पहले ही झोकेसे चटसे चिराग भी बुझ गया। बाहरके अँधेरेने घरमें घुसकर कमरे-भरमें अँधेरा कर दिया। और साथ-साथ कादम्बिनी भी एकदम घरके भीतर आ खड़ी हुई। उस समय करीब ढाई पहर रात बीत चुकी थी ; और बाहर जोरोंसे पानी पड़ रहा था।

कादम्बिनीने कहा—"सखी, मैं तुम्हारी वही कादम्बिनी हूँ, पर अब मैं जिन्दा नहीं, मरी हुई हूँ !"

योगमाया मारे डरके चिल्ला उठी ; और श्रीपतिके मुँहसे कोई आवाज ही नहीं निकला।

"पर मरनेके सिवा मैंने तुम लोगोंका और क्या बिगाड़ा

है ? मेरे लिए अगर इस लोकमें और परलोकमें, कहीं भी कोई जगह नहीं तो क्यों जी, अब मैं कहाँ जाऊँ ?"—तीव्र स्वरसे चीखकर मानो उसने इस गम्भीर वर्षा-निशीथमें सोते हुए विधाताको जगाकर पूछा—"क्यों जी, अब मैं कहाँ जाऊँ ?"

इतना कहकर और मूर्छित दम्पतिको अँधेरे घरमें छोड़कर कादम्बिनी उसी वक्त वहाँसे निकलकर विश्व-संसारमें अपने लिए जगह ढूँढ़ने चल दी।

५

कादम्बिनी किस तरह रानीहाट पहुंची, यह बतलाना कठिन है। वहाँ पहुंचकर पहले तो उसने अपनेको किसीकी निगाहमें नहीं पड़ने दिया ; तमाम दिन भूखी-प्यासी एक टूटे-फूटे पुराने खंडहर मन्दिरमें पड़ी रही। फिर वर्षाकी अकाल-संध्या जब अत्यन्त घनी हो आई और शीघ्र ही भारी आँधी-मेह आनेकी आशंकासे गाँवके लोग जब जल्दी-जल्दी अपने-अपने घर पहुंचकर निश्चिन्त होने लगे, तब वह खंडहरमेंसे निकलकर सड़क पर आई। सुसरालके द्वारपर पहुंचते ही एक बार उसका हृदय काँप उठा ; फिर भी साहस करके, लम्बा घूँघट खींचकर जब वह भीतर घुसी, तो दासी समझकर दरवानोंने उसे रोका नहीं। इतनेमें पानी भी खूब जोरोंसे पड़ने लगा और हवा भी खूब तेज चलने लगी।

उस समय घरकी मालिकिन, शारदाशङ्करकी स्त्री, अपनी विधवा ननदके साथ ताश खेल रही थीं। महरी थी रसोई

घरमें। और बीमार बच्चा बुखार कुछ ढीला पड़ जानेसे बिस्तरपर पड़ा सो रहा था। कादम्बिनी सबकी आँख बचाकर सीधी उसी कमरेमें पहुंची, जहाँ उसकी 'आँखोंका तारा' था। मालूम नहीं, वह क्या सोचकर सुसराल आई थी। शायद वह खुद भी न जानती होगी। वह तो सिर्फ इतना ही जानती है कि एक बार अपने प्यारे बच्चेको आँखोंसे देख आवे। उसके बाद कहाँ जायगी, क्या होगा, ये बातें उसने सोची तक न थीं।

दीआके उजालेमें देखा कि रोगसे पीड़ित मुरझाया हुआ कमजोर लाड़ला लाल उसका हाथोंकी मुट्ठी बाँधे पड़ा सो रहा है। देखते ही विधवाका उत्तप्त हृदय मानो प्याससे व्याकुल हो उठा। उसकी सारी बलाओंको टालकर उसे एक बार उठाकर छातीसे बिना लगाये वह कैसे जी सकती है! और, उसके बाद, फिर सोचने लगी कि 'मैं नहीं हूँ, इसको देखनेवाला कौन है! इसकी माको तो सोहबत अच्छी लगती है, दिन-भर गप्पें करा लो, ताश खिलवा लो, इतने दिन मेरे हाथ सौंपकर ही वह निश्चिन्त थी, कभी उसे लड़के पालनेकी दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। अब उसकी इतनी देखभाल कौन करता होगा?'

ठीक इसी समय बच्चेने सहसा करवट बदला; और उसी तरह अर्ध-निद्रित अवस्थामें बोल उठा—"चाची, पानी!"

'हाय भगवान्! सोनेका सूआ मेरा, तू अपनी चाचीको अभी तक नहीं भूला!'—कादम्बिनीने जल्दीसे सुराहीमेंसे गिलासमें पानी लिया; और बच्चेको अपनी छातीसे लगाकर बड़े प्यारसे धीरे-धीरे पिला दिया।

जब तक नींदकी खुमारी थी, हमेशाके अभ्यासके अनुसार चाचीके हाथसे पानी पीनेमें बच्चेको कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ। अन्तमें कादम्बिनीने जब बहुत दिनोंकी अपनी आकांक्षा मिटानेके लिए उसका मुंह चूमकर उसे फिरसे सुलाना चाहा, तो उसकी नींद उचट गई; और अपनी चाचीसे लिपटकर वह पूछने लगा—"चाची, तू मल गई थी?"

चाचीने कहा—'हाँ, बेटा!"

"फिर तू मेले पास लौट आई है? अब तू मलेगी तो नहीं?"

कादम्बिनी उसकी बातका उत्तर दे भी न पाई थी कि एक घटना और हो गई; महरी एक कटोरेमें दूध-साबू लिये घरमें घुस रही थी, कादम्बिनीको देखते ही वह यकायक कटोरा पटककर "अम्मा री" चिल्लाती हुई वह जमीनपर पछाड़ खाकर गिर पड़ी।

चिल्लाहट सुनते ही ताश फेंककर मालिकिन दौड़ी आईं; और कमरेमें पैर रखते ही वे भी काठके ठूंठकी तरह खड़ीकी खड़ी ही रह गईं; न भाग ही सकीं, न मुँहसे कुछ कह सकीं।

यह सब देखकर लड़केके मनमें भी डर-सा बैठ गया; वह भी रोने लगा; बोला—"चाची, तू जा।"

कादम्बिनीको बहुत दिन बाद आज अनुभव हुआ कि वह मरी नहीं है। वही पुराना घर-द्वार, वही सब-कुछ, वही लल्ला, वही स्नेह, सभी-कुछ उसके लिए समान जीवित दशामें ही है, बीचमें कोई विच्छेद नहीं, कोई व्यवधान नहीं। सहेलीके घर जाकर उसने अनुभव किया था कि उसकी बाल्यकालकी वह सहेली मर गई है, पर आज अपने लल्लाके पास आकर

उसे मालूम हुआ कि 'लल्लाकी चाची' तो रत्ती-भर भी नहीं मरी !

व्याकुल होकर वह बोल उठी—"जीजी, तुम लोग मुझे देखकर डर क्यों रही हो ? यह देखो, मैं तुम्हारी वही छोटी बहू, वही, वैसी ही तो हूं !"

मालिकिनसे खड़ा न रहा गया, मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं।

बहनके जरिये खबर पाकर शारदाशङ्कर बाबू स्वयं अन्तःपुरमें आ पहुंचे। उन्होंने हाथ जोड़कर कादम्बिनीसे कहा—"छोटी बहू, क्या तुम्हें यही चाहिए था ? बस, सतीश ही तो हमारे वंशका एक लड़का है। उसपर तुम क्यों दृष्टि डाल रही हो ? हम लोग क्या तुम्हारे गैर हैं ? तुम्हारे मरनेके बादसे बच्चा दिन-पर-दिन सूखता ही जा रहा है, इसकी बीमारी इसे छोड़ती ही नहीं। दिन-रात यह 'चाची' 'चाची' पुकारा करता है। जब तुम संसारसे विदा ही ले चुकी हो, तो फिर यह व्यर्थकी माया-ममता क्यों ? इसे भी छोड़ दो, हम लोग तुम्हारा यथोचित सत्कार कर देंगे।"

कादम्बिनीसे अब सहा न गया ; और वह तीव्र स्वरसे बोल उठी—"हाय हाय, मैं मरी नहीं हूं ! हाय, मैं तुम लोगोंको कैसे समझाऊँ कि मैं मरी नहीं हूँ ! यह देखो, मैं जिन्दा हूँ !"

और जमीनपर पड़ा हुआ फूलका कटोरा उठाकर वह बार-बार अपने माथेसे मारने लगी ; उसका भेजा फटकर खून बहने लगा। खून दिखाकर बोली—"यह देखो, मैं जिन्दा हूं !"

शारदाशङ्कर कठपुतलीकी तरह खड़े रहे। बच्चा भी डरके

मारे घबड़ा गया; और 'बापू' 'बापू' पुकारने लगा। दोनों मूर्छित स्त्रियाँ जमीनपर पड़ी रहीं।

और कादम्बिनी—"हाय, मैं मरी नहीं हूँ, मरी नहीं हूँ, मरी नहीं हूँ!"—चिल्लाती हुई घरसे बाहर निकली; और सीढ़ियोंसे उतरकर अन्तःपुरके तालाबमें कूद पड़ी। शारदाशङ्करको ऊपरके कमरेमें खड़े-खड़े ही किसीके तालाबमें गहरे पानीमें कूदनेका धमाका सुनाई दिया।

सारी रात पानी बरसता रहा, उसके दूसरे दिन सवेरे भी वर्षा बन्द नहीं हुई; और दोपहरको भी पानी बरसता रहा। इस तरह, कादम्बिनीने मरकर साबित किया कि वह मरी नहीं थी!

एक रात

सुरबालाके संग मैं एकसाथ पाठशाला गया हूँ; और आँख-मिचौनी खेलमें भी उसका साथी रहा हूँ। मैं अकसर उसके घर जाया करता था। सुरबालाकी मा मुझे बहुत प्यार करती थीं। किसी-किसी दिन वे हम दोनोंको एकसाथ खड़ा करके निरख-निरखकर देखतीं और आपसकी बातचीतमें कहतीं—"दोनोंकी जोड़ी कैसी अच्छी लगती है!"

तब मैं छोटा जरूर था; पर उनकी इस बातके मानी समझनेमें मैंने गलती की हो, ऐसा तो नहीं जान पड़ता। कारण,

बचपन ही से मेरे मनमें यह धारणा जमकर बैठ गई थी कि सुरबालापर औरोंकी बनिस्बत मेरा कुछ विशेष अधिकार है। उस विशेषाधिकारके मदमें आकर मैंने उसपर रौब तो जमाया ही है और अन्याय भी किया हो तो ताज्जुब नहीं। पर सुरबालाकी तरफसे इतना तो मानना ही पड़ेगा कि उसने काफी सहनशील बनकर मेरी सब तरहके आज्ञाओंका यथासम्भव पालन किया है ; और न करनेपर मैंने जो सजा दी है उसे मंजूर भी किया है। मुहल्लेमें उसके रूपकी सब तारीफ करते थे ; पर मुझ जैसे आवारा और उद्दण्ड लड़केकी निगाहमें उस सुन्दरताकी कोई खास कीमत नहीं थी। मैं समझता था कि सुरबाला सिर्फ मेरा प्रभुत्व माननेके लिए ही अपने बापके घर पैदा हुई है ; लिहाजा मेरे लिए वह खास तौरसे उपेक्षाकी पात्र है।

मेरे पिता गाँवके जमींदार चौधरियोंके यहाँ नायब थे। उनकी इच्छा थी कि लिखाईमें मेरा हाथ सध जानेपर मुझे जमींदारी सरिश्तेका काम सिखाकर कहींपर गुमाश्तेके कामपर लगा देंगे ; पर मैं उनकी इस बातसे मन-ही-मन नाराज था। हमारे मुहल्लेका नीलरतन जैसे कलकत्ता भागकर वहाँ पढ़-लिख कर कलेक्टर साहबके नीचे नाजिर बन गया है, मेरे जीवनका लक्ष्य भी लगभग वैसा ही, बहुत ऊँचा था। अगर कलेक्टरका नाजिर न हो सका, तो कम-से-कम दूसरी किसी अदालतका हेड क्लार्क तो बनूँगा ही, यह मैंने मन-ही-मन तय कर रखा था।

मैं बचनपसे ही देखता आया हूँ कि मेरे बाप उक्त अदालत-जीवियोंका बहुत ज्यादा सम्मान करते थे। नाना उपलक्षोंमें

मछली, साग-तरकारी, रुपये-पैसे आदिसे उनकी पूजार्चना की जाती थी, यह भी मुझसे छिपा नहीं था। इसीलिए अदालतके छोटे-से-छोटे कर्मचारी, यहाँ तक कि पियादों तकको अपने मनमें मैंने खूब सम्मानका आसन दे रखा था। असलमें ये हमारे देशके पूज्य देवता हैं, 'तेतीस-कोटि'के छोटे-छोटे नये-नये संस्करण! जमीन-जायदाद सम्बन्धी सिद्धि-लाभके लिए तो स्वयं सिद्धिदाता गणेशसे भी इनपर लोगोंका आन्तरिक भरोसा बहुत ज्यादा है; इसीलिए, पहले गणेशजीका जो कुछ हक था, आजकल वह हक इन्हींको मिला करता है।

मैं भी नीलरतनके दृष्टान्तसे उत्साहित होकर एक दिन मौका पाकर कलकत्ता भाग गया। पहले गाँवके एक जान-पहचान वालेके यहाँ ठहरा। उसके बाद, धीरे-धीरे बापसे भी पढ़ाईके लिए कुछ-कुछ मदद मिलने लगी; और पढ़ाई नियमसे होने लगी।

इसके अलावा मैं सभा-समितियोंमें भी शामिल हुआ करता था। इस विषयमें मैं निस्सन्देह हो गया था कि देशके लिए सहसा प्राण विसर्जन देनेकी बड़ी सख्त जरूरत है। पर किस तरह यह दुःसाध्य कार्य हो सकता है, यह मुझे नहीं मालूम था; और न कोई दृष्टान्त ही दिखाता था।

मगर फिर भी उत्साहमें कोई कमी नहीं थी। हम लोग बँवई-गाँवके लड़के थे; कलकत्ताके लड़कोंकी तरह सब बातोंको हँसीमें उड़ाना नहीं जानते थे; और इसलिए हमारी देश-भक्ति अत्यन्त दृढ़ थी। हमारी सभाके संचालकगण व्याख्यान दिया

करते थे ; और हम लोग चन्देका खाता लेकर बिना खाये-पिये यों ही धौरी-दुपहरीमें घर-घर भीख माँगते फिरते थे। सड़कके किनारे खड़े होकर विज्ञापन बाँटा करते, सभाकी जगहमें जाकर बेञ्च चौकी वगैरह लगाते ; और सभापतिके नामपर अगर कोई एक बात कह देता तो उससे कमर कसके लड़नेको आमादा हो जाते। शहरके लड़के हमारे इन लक्षणोंको देखकर हम लोगोंको 'गाँवके गँवार' कहने लगते थे।

कलकत्ता आया था नाजिर या सरिश्तेदार बनने ; पर मेजिनी गैरिबाल्डी बननेकी तैयारियाँ करने लगा।

इतनेमें मेरे पिता और सुरबालाके पिता दोनों ही एकमत होकर सुरबालाके साथ मेरे ब्याहकी तैयारियाँ करने लगे।

मैं पन्द्रह वर्षकी उमरमें कलकत्ता भाग आया था ; और तब सुरबालाकी उमर थी कुल आठ सालकी। अब मैं अठारह सालका हूँ। पिताका मत है कि मेरी ब्याहकी उमर क्रमशः बीतती जा रही है, पर इधर मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा कर ली कि आजीवन ब्याह न करूँगा और स्वदेशके लिए मर मिटूँगा। पितासे कह दिया कि पढ़ाई खतम किये बगैर ब्याह न करूँगा।

दो-ही-चार महीनेमें खबर मिली कि वकील रामलोचन बाबूके साथ सुरबालाका ब्याह हो गया। पतित भारतके लिए मैं तब चन्दा-वसूलीके काममें मशगूल था ; लिहाजा यह खबर मुझे बहुत ही मामूली-सी जान पड़ी।

एन्ट्रेन्स पास कर चुका था। फर्स्ट आर्टसकी परीक्षा देनेवाला था ; इतनेमें पिताकी मृत्यु हो गई। घरमें सिर्फ मैं ही अकेला

न था; माता और दो बहनें भी थीं; इसलिए काम-काजकी टोहमें घूमना पड़ा। बहुत कोशिश करनेके बाद मुझे नोआखाली विभागके एक छोटे-से कस्बेमें एक स्कूलकी सेकेण्ड-मास्टरी मिली।

सोचा कि अपने योग्य काम मिल गया, अच्छा ही हुआ। उपदेश और उत्साह दे-देकर हरएक विद्यार्थीको भावी भारतका सेनापति बना दूँगा।

काम शुरू कर दिया। देखा कि भावी भारतकी अपेक्षा वहाँ आसन्न परीक्षा या इम्तिहानकी हड़बड़ी ही बहुत ज्यादा है। छात्रोंको 'ग्रामर' और 'एलजबरा'के अलावा बाहरकी और-कोई बात समझानेसे हेडमास्टर साहब नाराज होते हैं। दो ही महीनेके अन्दर मेरा उत्साह ठंडा पड़ गया।

मुझ जैसे प्रतिभाहीन लोग घर-बैठे अनेक तरहकी कल्पनाएँ किया करते हैं; लेकिन अन्तमें कार्यक्षेत्रमें उतरनेके बाद उनके कंधेपर जब हल रखा जाता है और पीछेसे पूँछ मरोड़ी जाती है, तब वे सहिष्णुताके साथ सिर झुकाये हुए दिन-भर खेत जोतनेका काम करते हैं और उसके एवजमें शामको जो भर-पेट भूसा मिल जाता है उसीमें सन्तुष्ट रहते हैं। फिर उनमें उछल-कूद और उत्साह कुछ भी नहीं रह जाता।

उन दिनों आग लगनेकी आशंका थी, इसलिए एक मास्टरको स्कूलमें ही रहना पड़ता था। मैं छड़ीदा आदमी था, लिहाजा मेरे ही ऊपर यह भार आ पड़ा। स्कूलसे सटी-हुई एक छोटी-सी झोपड़ी थी, उसीमें मैं रहने लगा।

स्कूल कस्बेसे बाहर कुछ दूरीपर था, एक बड़े तालाबके किनारे।

चारों तरफ सुपारी, नारियल और मदारके पेड़ थे ; और स्कूलसे बिलकुल सटे-हुए दो बड़े-बड़े नीमके पेड़ थे, जिनकी छायासे स्कूलके मास्टर और छात्र काफी फायदा उठाया करते थे।

एक बातका उल्लेख करना भूल गया ; और अब तक उसे मैं उल्लेख-योग्य समझता भी न था। यहांके सरकारी वकील रामलोचन रायका मकान हमारे स्कूलसे नजदीक ही था। और मुझे यह मालूम था कि उनके साथ उनकी स्त्री, मेरी बाल्य-सखी, सुरबाला भी रहती है।

रामलोचन बाबूके साथ मेरी जान-पहचान हो गई है। सुरबालाके साथ मेरी बचपनकी जान-पहचान थी, यह बात रामलोचन बाबूको मालूम थी या नहीं, मैं नहीं कह सकता। मैंने भी उनसे इस नये परिचयमें इस सम्बन्धमें कोई बात कहना ठीक नहीं समझा। साथ ही यह बात भी मेरे मनमें अच्छी तरह उदय नहीं हुई कि सुरबालाका किसी दिन मेरे जीवनके साथ विशेष सम्बन्ध था।

एक दिन, छुट्टीके रोज मैं रामलोचन बाबूके घरपर उनसे मिलने गया। याद नहीं, किस विषयमें बात चल रही थी ; शायद वर्तमान भारतकी दुरवस्थाके सम्बन्धमें कुछ चर्चा कर रहे थे। वे इस बारेमें विशेष चिन्तित और व्याकुल हों, सो बात नहीं ; पर यह विषय ऐसा है कि तम्बाकू पीते-पीते इस बारेमें दो-एक घंटा अनर्गल बातें करते रहो, तो वक्त मजेमें कट जाता है।

इतनेमें बगलके कमरेमें बहुत ही मीठी जरा चूड़ियोंकी

झनझन, जरा कपड़ोंकी खसखस और किसीके कोमल पैरोंकी जरा-कुछ आहट-सी सुनाई दी। मैं अच्छी तरह समझ गया कि खिड़कीकी सँधमेंसे कुतूहलपूर्ण नेत्रोंसे मेरी ओर कोई देख रही है।

उसी क्षण दो आँखोंकी मुझे याद उठ आई। विश्वास, सरलता और शैशव-प्रीतिसे छलकती हुई दो बड़ी-बड़ी आँखें थीं वे, उनमें काले-काले तारे थे और स्थिर स्निग्ध दृष्टि थी उनकी। सहसा मेरे हृदयको मानो किसीने कड़ी मुट्ठीमें दाबकर मसोस दिया; और वेदनासे मेरा हृदय अध-पके फोड़ेकी तरह टीस मारने लगा।

मैं अपनी झोंपड़ीमें लौट आया; पर वह दर्द ज्यों-का त्यों बना ही रहा। मैं पढ़ता-लिखता, और भी काम करता, पर मनका वह भाव किसी भी तरह दूर न हुआ, मन मेरा सहसा भारी बोझ-सा बनकर छातीकी नसें पकड़कर ऐसा झूलने लगा कि उसके मारे मैं बेचैन हो उठा।

शामको कुछ स्थिर होकर सोचने लगा कि ऐसा क्यों हुआ? मनके भीतरसे जवाब मिला—'तुम्हारी वह सुरबाला कहाँ गई?'

मैंने उससे कहा—'मैंने तो उसे अपनी इच्छासे छोड़ दिया है। वह क्या हमेशा मेरे ही लिए बैठी रहती?'

मनके भीतरसे किसीने कहा—'तब जिसे चाहते ही पा सकते थे, अब अपना सिर दे-दे मारनेपर भी उसे एक बार आँखोंसे देखने तकका अधिकार नहीं मिल सकता! वह बचपनकी सुरबाला तुम्हारे कितने ही नजदीक क्यों न रही हो,

पर अब तो, उसकी चूड़ियोंकी झनकार सुनो, उसके जूड़ेके मसालेके तेलकी सुगन्धका अन्दाजा लगाते रहो, मगर फिर भी बीचमें एक दीवार हर हालतमें खड़ी ही रहेगी।'

मैंने कहा—'रहने दो, सुरबाला मेरी कौन है ?'

जवाब मिला—'माना कि वह आज तुम्हारी कोई भी नहीं है, पर सुरबाला तुम्हारी क्या नहीं हो सकती थी ?'

बात तो सच है। सुरबाला मेरी क्या नहीं हो सकती थी ? सबसे बढ़कर अन्तरंग हो सकती थी, सबसे ज्यादा नजदीक और घनिष्ठ हो सकती थी, मेरे जीवनके सम्पूर्ण सुख-दुःखोंकी साथिन हो सकती थी ; पर आज वह इतनी दूर है, इतनी पराई है कि आज मुझे उसे देखने तककी मनाही है, उससे बात करनेमें भी दोष है, उसके विषयमें चिन्ता करना भी पाप है ! और, एक रामलोचन नामका अनजान आदमी अचानक आ धमका और सिर्फ दो-चार रटे हुए मन्त्र पढ़-पढ़ाकर सुरबालाको दुनियाके और सबोंके पाससे क्षण-भरमें झपट्टा मारकर ले गया !

मानव-समाजमें मैं किसी नई नीतिका प्रचार करने नहीं बैठा ; न मैं समाजको तोड़ने आया हूं, और न बन्धन तोड़ना पसन्द ही करता हूँ। मैं तो सिर्फ अपने मनके असली भावोंको जाहिर करना चाहता हूँ। अपने मनमें जो भाव उठा करते हैं, वे क्या सभी विचार करने योग्य होते हैं ? पर क्या करूँ, रामलोचनके घरमें दीवारकी ओटमें जो सुरबाला खड़ी हुई थी, वह रामलोचनकी अपेक्षा मेरी ही अधिक थी,

यह बात मेरे मनसे किसी भी तरह दूर ही नहीं होना चाहती। माना कि ऐसा विचार करना बिलकुल असंगत और अत्यन्त अन्यायपुक्त है, पर ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है।

मेरा मन अब किसी भी काममें नहीं लगता। दोपहरको जब क्लासके लड़के गुनगुनाकर पढ़ा करते हैं, बाहर जब धू-धू लू चलती रहती है, गरम हवा जब नीमकी पुष्प-मंजरियोंकी सुगन्ध वहा लाती है, तब मेरी इच्छा होती है, क्या इच्छा होती है सो नहीं मालूम, हाँ, इतना मैं कह सकता हूँ कि भारतकी उन भावी आशाओंको, होनहार सन्तानोंको, उनकी व्याकरणकी भूलें बताकर जिन्दगी बसर करनेकी इच्छा तो कतई नहीं होती।

स्कूलकी छुट्टी हो जानेपर उस सुनसान घरमें अकेले मेरा मन नहीं लगता; और, अगर कोई भला-मानस मिलने आता तो वह भी नागवार गुजरता। शामके वक्त तालाबके किनारे सुपारी और नारियलके पेड़ोंकी अर्थहीन मर्मरध्वनि सुनते-सुनते मैं सोचने लगता कि मनुष्य-समाज एक जटिल भ्रमका जाल है। ठीक वक्तपर ठीक काम करनेकी किसीको भी याद नहीं रहती, और उसके बाद फिर वह बेठीक वक्तपर बेठीक वासनाएँ लेकर तड़पता रहता है।

तुम सरीखा आदमी सुरबालाका पति बनकर बुढ़ापे तक खूब सुखसे रह सकता था, सो तुम बनने चले गैरिबाल्डी, और हुए आखिर एक गँवई-गाँवके स्कूलके सेकेण्ड-मास्टर! और रामलोचन राय वकील है, उसके लिए खास तौरसे सुरबालाका

हो पति बनना कोई खास जरूरी नहीं था; ब्याहके एक क्षण पहले तक उसके लिए जैसी सुरबाला थी, वैसी ही भवशङ्करी; वही रामलोचन आज बगैर कुछ सोचे-समझे सुरबालाके साथ ब्याह करके सरकारी वकील बनकर मजेमें रुपये पैदा कर रहा है! जिस दिन दूधमें जरा धुएँकी बू आती है, उस दिन सुरबालाको वह डाट देता है और जिस दिन मन प्रसन्न रहता है उस दिन सुनारको बुलवाकर सुरबालाके लिए गहने बनवाने देता है! खूब मोटा-ताजा है, अचकन पहनता है, उसे किसी तरहका असन्तोष नहीं, किसी दिन वह तालाबके किनारे बैठकर आकाशके तारे गिन-गिनकर हाय-तोबा करके रात नहीं बिताता।

रामलोचन किसी भारी मुकदमेके कामसे कहीं बाहर गया था। स्कूल-वाले घरमें जैसा मैं अकेला था, उस दिन सुरबालाके घर सुरबाला भी शायद वैसी ही अकेली थी।

याद है, उस दिन सोमवार था। सवेरेसे बादल हो रहे थे। करीब दस बजेसे टप-टप मेह बरसने लगा। बादलोंकी हालत देखकर हेड-मास्टरने स्कूलकी जल्दी छुट्टी कर दी। काले बादलोंके टुकड़े मानो किसी एक महा-आयोजनके लिए तमाम आकाशमें दिन-भर इधरसे उधर दौड़-धूप करते रहे। उसके दूसरे दिन शामको मूसलधार वर्षा और साथ-साथ आँधी भी शुरू हुई। जितनी रात होने लगी, वर्षा और आँधीका वेग उतना ही बढ़ता गया। पहले पुरवैया हवा चलती रही, फिर क्रमशः उत्तर और उत्तर-पूर्वकी हवा चलने लगी।

ऐसी रातको सोनेकी कोशिश करना व्यर्थ है। सहसा याद

उठ आई कि आजकी ऐसी रातमें, ऐसे आँधी-मेहमें, सुरबाला घरमें अकेली होगी। हमारा स्कूल-वाला घर उसके घरसे कहीं मजबूत है। मैंने कितनी ही बार सोचा कि उसे मैं स्कूल-वाले घरमें बुला लूँ और मैं तालाबके किनारे रात बिताऊँ; पर किसी भी तरह मनको स्थिर न कर सका।

रातके करीब एक-डेढ़ बजे होंगे। सहसा बाढ़ आनेका शब्द सुनाई दिया, मानो समुद्र दौड़ा आ रहा हो। मैं घरसे बाहर निकल पड़ा। सुरबालाके घरकी ओर चला। रास्तेमें तालाबकी मेड़ है, वहाँ तक पहुंचनेमें मुझे घुटनों तक पानी पड़ा। मैंने मेड़के ऊपर चढ़कर देखा तो वहाँ एक और तरंग आ उपस्थित हुई है। हमारे तालाबकी मेड़का कुछ हिस्सा लगभग ग्यारह हाथ ऊँचा होगा।

मेड़पर मैं जिस समय चढ़ने लगा उसी समय दूसरी ओरसे एक और आदमी चढ़ा। वह आदमी कौन था, यह मेरी सम्पूर्ण अन्तरात्माने, मेरे सिरसे लेकर पैर तक सम्पूर्ण अंगोंने, जान लिया। और उसने भी मुझे पहचान लिया, इसमें मुझे जरा भी सन्देह नहीं।

बाकी सब-कुछ पानीमें डूब चुका था, सिर्फ हम ही दोनों जने उस पाँच-छै हाथके द्वीपमें आकर खड़े हो गये।

तब प्रलयका समय था, आकाशमें तारोंका भी प्रकाश न था, और संसारके सारे दीप बुझ चुके थे; तब एकआध बात कर लेनेमें भी कोई हानि नहीं थी, पर एक भी बात किसीके मुँहसे नहीं निकली। किसीने किसीसे कुशल तक न पूछा।

दोनों जने सिर्फ अन्धकारकी तरफ देखते रहे। और पाँवोंके नीचे घोर काले रंगका उन्मत्त मृत्यु-स्रोत गरजता हुआ प्रवाहित होता रहा।

आज सम्पूर्ण विश्व-संसारको छोड़कर सुरबाला मेरे पास आकर खड़ी हुई है। आज मेरे सिवा सुरबालाका संसारमें और कोई भी नहीं है। एक दिन बचपनकी वह सुरबाला न-जाने किस जन्मान्तरसे, किस पुराने रहस्यान्धकारसे, बहकर इस सूर्य-चन्द्रालोकित लोक-परिपूर्ण पृथिवीपर मेरे पास आ लगी थी; और आज, कितने दिनों बाद, उसी आलोकमय लोकमय पृथिवीको छोड़कर इस भयानक जनशून्य प्रलयान्धकारमें वह अकेली मेरे ही पास आ खड़ी हुई है। जन्म-स्रोतने जिस नव-कलिकाको मेरे पास ला पटका था, अब मृत्यु-स्रोत उसी विकसित पुष्पको मेरे ही पास ले आया है; अब सिर्फ एक और लहरके आते ही पृथिवीके इस टुकड़ेसे, विच्छेदके इस डंठलसे टूटकर हम दोनों एक हो जायँगे।

वह लहर न आवे। पति-पुत्र-गृह-धन-परिवारको लेकर सुरबाला चिरकाल तक सुखसे रहे। मैंने इसी एक रातमें महाप्रलयके तटपर खड़े-खड़े अनन्त आनन्दका आस्वाद पा लिया है।

रात करीब खतम हो आई, आँधी थम गई, पानी घट गया; सुरबाला बगैर कुछ बोले-चाले चुपचाप घरकी ओर चल दी; और मैं भी बिना कुछ कहे-सुने चुपकेसे अपने घर लौट आया।

सोचने लगा कि मैं नाजिर भी न हुआ, सरिश्तेदार भी न

हुआ, गैरिबाल्डी भी न हो सका, मैं एक टूटे-फूटे स्कूलका सेकेण्ड-मास्टर हूँ। मेरे इस सारे जीवनमें सिर्फ क्षण-भरके लिए एक अनन्त रातका उदय हुआ था, मेरी परमायुके सम्पूर्ण दिनोंमें सिर्फ यही एक रात मेरे इस तुच्छ जीवनकी एकमात्र चरम सार्थकता है।

एक बरसाती कहानी

यहाँसे बहुत दूर, उससे भी दूर, समुद्रके बीच एक द्वीप है। वहाँ सिर्फ ताशके बादशाह, ताशकी बेगम, ताशके इक्के और ताश ही के गुलाम रहते हैं। दुरी-तिरीसे लेकर नहला-दहला तक और-भी अनेक गृहस्थोंके घर हैं; पर उनकी शुमार ऊँची जातमें नहीं है।

इक्का, बादशाह और गुलाम ये तीन ही मुख्य वर्ण हैं; नहला-दहला आदि अन्त्यज हैं, इक्का-बादशाहके साथ एक पंक्तिमें बैठनेका उन्हें हक नहीं।

पर उनकी शृङ्खला बड़ी अच्छी है। किसकी कितनी कीमत और इज्जत है, यह बहुत पहलेसे ही तय हो चुका है; उसमेंसे जरा भी इधर-उधर नहीं हो सकता। सभी-कोई निर्दिष्ट नियमानुसार अपना-अपना काम करते रहते हैं। यह चलना केवल वंशानुक्रमसे अपने पूर्वजोंकी लकीरपर चलना मात्र है; जैसे 'अ-आ-इ ई' का पढ़नेवाला लड़का पट्टीपर लिखे हुए हरूफोंपर हाथ चलाता रहता है वैसी ही।

इनका काम क्या है, सो विदेशियोंके लिए समझना मुश्किल है। सहसा देखनेसे खेल मालूम देगा। सिर्फ नियमसे चलना-फिरना, नियमसे आना-जाना और नियमसे उठना-बैठना, बस, यही काम है उनका। अदृश्य हाथ उन्हें चलाते हैं और वे चलते हैं।

उनके चेहरोंपर भावोंका कोई परिवर्तन नहीं होता। हमेशासे उनपर एक ही भावकी मुहर लगी हुई है, जैसे आँखें फाड़-फाड़कर देखती हुई तसवीर हों। बाबा आमदके जमानेसे अब तक, सिरकी टोपीसे लेकर पैरके जूते तक, ज्यों-के-त्यों एकसे बने हुए हैं।

किसीको भी कभी कुछ सोचना नहीं पड़ता, विचारना नहीं पड़ता, सभी-कोई निर्जीवकी तरह चुपचाप चला-फिरा करते हैं; गिरते समय बिना आहटके चुपकेसे गिर जाते हैं और स्थिर दृष्टिसे चित होकर आकाशकी ओर देखते रहते हैं।

किसीके कोई आशा नहीं, अभिलाषा नहीं, नये मार्गपर चलनेकी चेष्टा नहीं, हँसी नहीं, रोना नहीं, सन्देह नहीं, दुविधा नहीं, कुछ नहीं। पिंजड़ेके अन्दर जैसे चिड़िया फड़फड़ाती है, इन चित्रवत् मूर्तियोंके अन्तःकरणमें वैसा किसी जीवित प्राणीके अशान्त पश्चात्तापका-सा कोई लक्षण नहीं दिखाई देता।

पर किसी समय इन पिंजड़ोंमें जीवोंका वास था; और तब पिंजड़ा हिलता डुलता था, भीतरसे चिड़ियोंके पंखोंकी आवाज और चुहचुहाहट सुनाई पड़ती थी, गहन वन और विस्तृत आकाशकी बात याद आती थी। पर अब सिर्फ पिंजड़ेकी

संकीर्णता और सिलसिलेसे लगी हुई लोहेकी सींकोंका ही अनुभव होता है ; चिड़ियाँ उड़ गईं या जीवन्मृत हुई पड़ी हैं, यह कौन कह सकता है ?

गजबका सन्नाटा है, बड़ी शान्ति है। पूरा आराम है, बड़ा सन्तोष है। रास्तेमें, घाटमें, घरमें, आँगनमें सर्वत्र संयत वायुमण्डल है ; कहीं कुछ शब्द नहीं, द्वन्द्व नहीं, उत्साह नहीं, आग्रह नहीं ; केवल रोजमर्राके छोटे-मोटे काम हैं और थोड़ा-बहुत आराम है।

समुद्रने अविश्राम सुरतानकी धुनमें, तटपर हजारों फेन-शुभ्र कोमल हथेलियोंके आघातसे समस्त द्वीपोंको मीठी नींद सुला रखा है ; पक्षी-माताके फैले हुए नील पंखोंके समान आकाश दिग्दिगन्तकी रक्षा कर रहा है। बहुत दूर उस पार गहरी नील रेखाके समान विदेशका आभास दीख पड़ता है। वहाँसे राग-द्वेषका द्वन्द्व-कोलाहल समुद्र पार होकर नहीं आ सकता।

२

समुद्रके उस पार, उस विदेशमें किसी तिरस्कृत रानीका लड़का एक राजकुमार रहता है। वह अपनी निर्वासित माताके साथ समुद्रके किनारे अपनी धुनमें बचपन बिता रहा है।

वह अकेला बैठा-बैठा मन-ही-मन आशाका एक बड़ा-भारी जाल बुन रहा है। उस जालको दिशा-विदिशाओंमें फैलाकर कल्पनासे विश्व-जगतके नये-नये रहस्योंको फँसाकर अपने द्वारके सामने इकट्ठा करता जाता है। उसका अशान्त चित्त समुद्रके

किनारे आकाशकी सीमापर उस दिगन्त-रोधी नील पर्वतमालाके उस पार हमेशा विचरण करता फिरता है। वह जानना चाहता है कि पक्षीराज घोड़ा कहाँ मिलता है, सर्पके मस्तककी मणि कहाँ मिलती है, पारिजात-पुष्प और सोने चाँदीकी जादूकी लड़की कहाँ मिलती है, सात-समुद्र तेरह-नदीके उस पार दुर्गम दैत्य-भवनमें सपनेकी अलोकसुन्दरी राजकुमारी कहाँ सो रही है ?

राजपुत्र पाठशालामें पढ़ने जाता है ; और वहाँसे लौटकर सौदागरके बेटेसे देश-विदेशकी बातें और कोतवालके बेटेसे ताल-बेतालकी कहानी सुनता है।

रिमझिम-रिमझिम मेह बरसता और बादलोंसे तमाम दिशाएँ अन्धकारमय हो जातीं। उस समय घरके द्वारपर माके पास बैठकर समुद्रकी ओर देखता हुआ राजपुत्र कहता—"मा, कोई खूब दूर देशकी कहानी सुनाओ न, मा!" मा बहुत देर तक अपने बचपनमें सुनी हुई किसी अपूर्व देशकी अपूर्व कहानी सुनाने लगती ; और वर्षाके झरझर शब्दके साथ उस कहानीको सुनकर राजपुत्रका मन उदास हो जाता।

एक दिन सौदागरके बेटेने आकर राजकुमारसे कहा—"मित्र, पढ़ाई तो खतम हो चुकी ; अब कहीं देश-भ्रमणके लिए जाऊँगा ; तुमसे विदा लेने आया हूँ।"

राजकुमारने कहा—"मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगा।"

कोतवालके बेटेने कहा—"मुझे अकेला ही छोड़ जाओगे ? मैं भी तो साथी हूं तुम्हारा ?"

राजकुमारने अपनी दुःखिनी मासे जाकर कहा—"मा, मैं

देश-भ्रमणके लिए जा रहा हूँ। अबकी तुम्हारा दुःख दूर करनेका उपाय कर आऊँगा।"

तीनों मित्र मिलकर चल दिये।

३

समुद्रमें सौदागरकी बारह नाव बिलकुल तैयार खड़ी थीं; तीनों मित्र उनमें जा बैठे। दखिनी हवासे पाल भर गये और नावें राजपुत्रकी मनोवासनाकी तरह दौड़ती हुई चलने लगीं।

शंख-द्वीपमें जाकर उन लोगोंने एक नाव शंखोंसे भरी, चन्दन-द्वीपमें जाकर एक नाव चन्दनसे भरी, और प्रवाल-द्वीपमें जाकर एक नाव प्रवालोंसे भरी।

उसके बाद और चार बरसोंमें जब गजदन्त, कस्तूरी, लौंग और जायफलसे और चार नावें भर गईं; तब सहसा एक बड़ा-भारी तूफान उठ खड़ा हुआ।

सब नावें डूब गईं, सिर्फ एक नाव बची, जिसने तीनों मित्रों को द्वीपमें बुरी तरह पटक दिया और खुद टुकड़े टुकड़े हो गई।

उस द्वीपमें ताशके इक्के, ताशके बादशाह, ताशकी बेगम और ताश ही के गुलाम अपने-अपने कायदेसे रहते, और दहला-नहला आदि भी उनकी सेवा बजाते हुए नियमानुसार दिन काटते हैं।

४

ताशके राज्यमें अब तक कोई उपद्रव नहीं था। अब पहले-पहल वहाँ विशृङ्खलता शुरू हुई।

इतने दिनोंके बाद यह तर्क उठा कि ये तीन आदमी, जो सहसा एक दिन शामको समुद्रसे निकलकर आये हैं, इन्हें किस वर्ण या श्रेणीमें रखा जाय ?

पहले तो यह विचारणीय बात है कि इनकी जात क्या है, इक्का, बादशाह, गुलाम या नहला-दहला ? दूसरी बात यह कि इनका गोत्र क्या है, हुक्म, पान ईंट या चिड़ी ?'

इन सब बातोंके बगैर सुलझे, इनके साथ किसी तरहका व्योहार चलना कठिन है। ये किनका अन्न खायेंगे, किनके साथ रहेंगे ; इनमेंसे अधिकार-भेदसे कौन वायुकोणमें, कौन नैऋृत-कोणमें, कौन ईशानकोणमें सिराहना रखकर सोयेगा और कौन खड़े-खड़े ? इन सब बातोंका कुछ भी निर्णय नहीं हो रहा है।

इस राज्यमें इतनी जबरदस्त दुश्चिन्ताका कारण इससे पहले कभी नहीं आया।

पर भूखके मारे तड़पते हुए विदेशी मित्रोंको इन सब गहन विषयोंकी रंचमात्र भी चिन्ता न थी। उन्हें किसी तरह खाने-पीनेको मिल जाय तो वे लाखों पा जायें। जब देखा कि लोग उन्हें खिलाने-पिलानेमें संकोच कर रहे हैं और विधि-विधान ढूँढ़नेके लिए इक्के बड़ी-बड़ी सभाएँ कर रहे हैं, तब वे, जहाँ जो कुछ मिला, खाने-पीने लगे।

उनके इस बरतावसे दुरी-तिरी तक दंग रह गईं। तिरीने कहा—"भाई चौआ, इनके कोई परहेज-विचार नहीं है !" दुरीने कहा—"बहन तिरी, इससे तो साफ मालूम पड़ता है कि ये हम लोगोंसे भी नीची जातिके हैं।"

खा-पीकर ठंडे होकर तीनों मित्रोंने देखा कि यहाँके लोग कुछ नये ही ढंगके हैं। मानो संसारमें उनकी कहीं भी जड़ नहीं है। मानो इनकी चोटी पकड़कर किसीने इन्हें उखाड़ लिया है और ये संसारके स्पर्शसे हटकर त्रिशंकुकी तरह लटक रहे हैं। जो-कुछ भी ये करते हैं, मानो वह कोई दूसरा ही कर रहा है। इनका ठीक पुतली-नाचकी झूलती हुई पुतलियोंका-सा हाल है। इसीसे किसीके मुँहपर कोई भाव नहीं, कोई चिन्ता नहीं, सभी कोई अत्यन्त गम्भीर चालसे और एक ही बँधे हुए नियमसे चल-फिर रहे हैं। फिर भी, कुल मिलाकर ये बड़े अजीब, बड़े विचित्र से लगते हैं।

चारों तरफ इस तरहकी जीवित निर्जीवताका गम्भीर रंग-ढंग देखकर राजकुमार आकाशकी ओर मुँह उठाकर कहकहा मारके हँस पड़ा ; और उसकी वह आन्तरिक कुतूहल-पूर्ण उच्च हास्यध्वनि ताश-राज्यके सुनसान मार्गमें बड़ी विचित्र सुनाई दी। यहाँके सभी-कोई ऐसे सुगम्भीर हैं कि कुतूहल अपने अकस्मात् निकले हुए उच्छृङ्खल शब्दसे आप ही चकित हो गया, म्लान होकर बुझ गया ; और चारों तरफका लोक-प्रवाह पहलेसे कहीं दूना स्तब्ध और गम्भीर मालूम होने लगा।

दोनों मित्रोंने व्याकुल होकर राजकुमारसे कहा—"मित्र, इस निरानन्द भूमिपर अब तो एक क्षण भी नहीं रहा जा सकता। यहाँ और दो-चार दिन रह गये तो बीच-बीचमें अपनेको छू छू कर देखना पड़ेगा कि जिन्दा हैं या मर गये !"

राजकुमारने कहा—"नहीं भाई, मुझे बड़े मजे आ रहे हैं।

देखनेमें ये आदमी जैसे लगते हैं; पर इनमें एक-आध बूँद जीवित वस्तु भी है या नहीं, एक बार हिला-डुलाकर देख तो लेना चाहिए।"

५

कुछ समय इसी तरह बीत गया। मगर ये तीनों विदेशी युवक वहाँके किसी नियमके जालमें पकड़ाई न दिये। वहाँ जब जिस समय उठना, बैठना, मुँह फेरना, चित होना, औंधे होना, सिर हिलाना, कलाबाजी खाना चाहिए, ये उनमेंसे कोई भी काम न करते; बल्कि मजे ले-लेकर देखते और हँसते रहते। यह बात कभी उनके दिमागमें भी न आती कि यहाँके इन विधि-विहित असंख्य क्रिया-कलापोंमें कोई महान गम्भीरता भी हो सकती है।

एक दिन इक्का बादशाह और गुलामने आकर राजपुत्र, कोतवालके लड़के और सौदागरके बेटेसे, फूटे बासनकी तरह बजकर बड़ी गम्भीरतासे पूछा—"तुम लोग नियमके माफिक क्यों नहीं चलते?"

तीनों मित्रोंने उत्तर दिया—"हमारी तबीयत।"

ताश-राज्यके अधिनायकने बड़े आश्चर्यके साथ, मानो सपनेसे जगकर पूछा—"तबीयत! वह ससुरी कौन-सी बला है?"

पहले तो किसी भी तरह उनकी समझ ही में न आया कि तबीयत क्या चीज है; पर बादमें धीरे-धीरे समझ गये। वे प्रतिदिन देखने लगे कि इस तरह न चलकर उस तरह चलना भी सम्भव है; जैसे 'इधर' है, वैसे 'उधर' नामकी भी कोई चीज

है। विदेशसे तीनों जीते जागते दृष्टान्तोंने आकर समझा दिया कि विधानकी चहारदीवारीके भीतर ही मनुष्यकी सम्पूर्ण स्वाधीनताकी सीमा नहीं है। और फिर इसी तरह वे आगे चलकर 'तबीयत' नामकी एक राज-शक्तिके प्रभावको अस्पष्टरूपसे अनुभव भी करने लगे।

ज्यों ही राज-शक्तिका उन्हें अनुभव हुआ, त्यों ही ताश-राज्य इस छोरसे लेकर उस छोर तक कुछ-कुछ हिल उठा; और सोये पड़े बड़े-भारी अजगरकी बहुत-सी कुण्डलियोंके अन्दर जिस तरह अत्यन्त मन्दगतिसे जागरण संचरण करता है उस तरह उसमें जागरण शुरू हो गया।

६

इतना सब-कुछ होते हुए भी निर्विकार-मूर्ति बेगमोंने अब तक किसीकी ओर आँख उठाकर नहीं देखा, चुपचाप बिना किसी घबराहटके वे अपना काम कर रही थीं। अब, एक दिन वसन्तकी संध्याको इनमेंसे एकने अचानक चकित होकर अपनी आँखोंकी काली-काली बरुनियोंको ऊपर उठाकर राजपुत्रकी ओर मुग्ध और कटाक्षपूर्ण नेत्रोंसे देखा। राजपुत्र चौंक उठा; बोला—"अरे, यह क्या! मैंने तो समझा था कि संगमरमरकी मूर्ति है! सो बात तो नहीं, यह तो नारी है!"

फिर अपने दोनों मित्रोंको एकान्तमें ले जाकर राजपुत्रने कहा—"भई, इनमें तो बड़ा माधुर्य है बड़ी, मिठास है। देखो न, इनकी भावुकतापूर्ण स्निग्ध-सजल काली-काली आँखें तो देखो!

इनके पहले ही कटाक्षसे मुझे तो ऐसा मालूम हुआ कि मैंने किसी नई दुनियामें आकर प्रथम ऊषाका प्रथम उदय देखा! अहा, इतने दिनों तक धीरजके साथ रहना हमारा आज सार्थक हुआ।"

दोनों मित्र बड़े कुतूहलके साथ हँसते हुए बोले—"सचमुच!"

और उधर वह पानकी बेगम अभागिन आये-दिन अपने नियमोंको भूलने लगी। उसे जब जहाँ हाजिर होना चाहिए सो न होकर वह बार-बार सब-कुछ भूल जाने लगी। मान लो, जब उसे गुलामके बगलमें पंक्तिवार खड़ा होना चाहिए, तब वह सहसा राजपुत्रके बगलमें जाकर खड़ी हो जाती; और तब गुलाम दृढ़ और गम्भीर स्वरमें कह उठता—"बीबी, तुम भूल गईं?" सुनकर पानकी बेगमके गुलाबी गाल और-भी सुर्ख हो उठते; उसकी निर्निमेष प्रशान्त दृष्टि नीचेको झुक जाती। राजपुत्र उत्तर देता—"कुछ भूल नहीं हुई, आजसे मैं ही गुलाम हूं।"

तुरत खिले हुए रमणी-हृदयसे यह क्या अपूर्व शोभा निकलने लगी, यह कैसा अचिन्तनीय लावण्य विकसित होने लगा! उसकी गतिमें यह कैसी सुमधुर चपलता है, उसकी निगाहोंमें यह कैसी मधुकी तरंगें हैं, उसके सारे अस्तित्वसे यह कैसा एक तरहका सुगन्धिमय अनुराग और व्यथाका उच्छ्‌वास उच्छ्‌वसित हो रहा है!

इस नवीन अपराधिनीकी भूल सुधारनेकी तरफ ध्यान देते हुए अब तो और-सबोंसे भी गलतियाँ होने लगीं। इक्का अपने समीचीन मानकी रक्षा करना भूल गया, बादशाह और गुलाममें अब कोई भेदभाव न रहा, नहला-दहला भी न-जाने कैसे हो गये।

इस पुराने द्वीपमें वसन्तकी कोयल बहुत बार बोली है; पर अबकी बार जैसी बोली है वैसी शायद पहले कभी नहीं बोली। समुद्र हमेशासे एक ही तरहका स्वर आलापता आ रहा है, शुरूसे लेकर अब तक वह सनातन विधानकी अलंघनीय महिमा ही एकस्वरमें गाता आया है; पर आज वह सहसा दखिनी-हवासे-चंचल विश्वव्यापी यौवन-तरंगोंकी तरह प्रकाश और छायामें, भाव और भाषामें, अपनी अथाह आकुलता व्यक्त करनेकी कोशिश करने लगा।

७

क्या यही वह इक्का है, यही वह बादशाह है, यही वह गुलाम है? कहाँ गये वे परिपुष्ट परितुष्ट गोल-मटोल सुन्दर चेहरे? आज तो कोई आकाशकी ओर देख रहा है तो कोई समुद्रके किनारे बैठा न-जाने क्या सोच रहा है; किसीको रातमें नींद नहीं आती तो किसीको भोजन नहीं रुचता।

किसीके चेहरेपर ईर्ष्या है तो किसीके अनुराग; किसीके चेहरेपर व्याकुलता है तो किसीके संशय। कहीं हँसी है तो कहीं रोना; कहीं विषाद है तो कहीं संगीत। आज सभी कोई एक बार अपनी तरफ और एक बार दूसरेकी तरफ देख रहे हैं, सभी-कोई अपने साथ दूसरोंकी तुलना कर रहे हैं।

इक्का सोच रहा है कि नौजवान बादशाह वैसे देखनेमें तो बुरा नहीं है, पर उसके चेहरेपर खूबसूरती नहीं; मेरे चाल-चलनके अन्दर ऐसी एक महानता है कि किसी-किसी खास व्यक्तिकी निगाह मेरी तरफ खिंचे बिना रह ही नहीं सकती।

बादशाह सोच रहा है कि इक्का हमेशा बड़े मिजाजसे गरदन टेढ़ी किये इठलाता रहता है ; वह समझता है कि 'उसे देखकर बेगमोंकी छाती फटती होगी !' मन-ही-मन यह कहता हुआ वह जरा तिरछी हँसी हँसकर दर्पणमें अपना मुंह देख लेता ।

देश-भरमें जितनी भी बेगम थीं, सबकी सब खूब शृङ्गार करतीं ; और आपसमें एक दूसरीसे कहतीं—"बस अब रहने भी दो ! गर्विता नायिकाके लिए इतनी सज-धजकी धूम क्यों ? तेरा रंग-ढंग देखकर मुझे तो शरम आती है !" और फिर पहलेसे दूने उत्साह और उद्यमसे अपने हाव-भाव फैलाती रहतीं ।

कहीं दो सखा तो कहीं दो सखियाँ मिलकर गलबहियाँ डाले एकान्तमें बैठी आपसमें गुप्त बातचीत करती रहतीं । कभी हँसती तो कभी रोतीं ; कभी गुस्सा होतीं तो कभी रूठ जातीं, और पिछेसे फिर मनाती फिरतीं ।

और, युवकगण सड़कके किनारे, वनकी छायामें, पेड़ोंकी जड़से पीठ टेके सूखे-पत्तोंपर पैर पसारे आलसमें बैठे रहते । और नवयुवतियाँ सुनील वस्त्र पहने उस छाया-पथसे अपनी धुनमें चलती हुई वहाँ आकर निगाहें नीची करके इस तरह आँखें फेर लेतीं जैसे किसीको उन्होंने देखा ही नहीं ; मानो वहाँ वे किसीको दिखाई देने नहीं आईं । ऐसा हाव-भाव दिखलाती हुई वहाँसे निकल जातीं ।

उनकी इन शरारतोंको देखकर कोई-कोई पागल युवक दुःसाहसकी लकड़ी टेकता हुआ जल्दी-जल्दी कदम रखता हुआ किसी एकके पास पहुंच जाता ; और मनके पसन्दकी एक भी

बात जब उसे याद न आती तो शर्मिन्दा होकर खड़ा रह जाता। इस तरह अनुकूल अवसर उसके हाथसे निकल जाता, और तरुणी भी अतीत क्षणकी तरह क्रमशः दूर जाकर विलीन हो जाती।

सिरपर चिड़ियाँ बोलती रहतीं; वसन्तकी हवा आँचल और अलकें उड़ाती हुई सनसनाती चली जाती; पेड़ोंके पत्ते झरझर मरमर शब्द करते रहते; और समुद्र उन तरुण-तरुणियोंके हृदयकी अव्यक्त वासनाओंको अपनी लगातार उठती हुई लहरों और ध्वनियोंको झूलेमें बिठाकर दूनी-दूनी रमक बढ़ाता रहता।

किसी-एक वसन्तमें तीन विदेशी युवकोंने आकर सूखी गंगामें ऐसा ही एक भारी तूफान खड़ा कर दिया है।

८

राजकुमारने देखा कि ज्वार-भाटाके उतार-चढ़ावमें सारा देश स्तम्भित हो गया है। किसीके मुंहपर कोई बात नहीं, सिर्फ एक दूसरेका मुँह ताकना, एक कदम बढ़ना और दो कदम पीछे हटना, अपने मनकी वासनाओंका ढेर लगाकर बालूके महल चिनना और तोड़ना। सभी अपने घरके एक कोनेमें बैठे अपनी ही अग्निमें अपनी आहुति दे रहे हैं। दिनों-दिन वे दुबले-पतले कमजोर और खामोश-से होते जा रहे हैं। सिर्फ उनकी आँखें-ही-आँखें जल रही हैं, और मनकी बात ओठों तक आकर उन्हें इस तरह कँपाकर रह जाती है जैसे नये पेड़के कोमल पत्ते हवासे काँपते हैं।

राजपुत्रने सबको बुलाकर कहा—"बाँसुरी लाओ, तुरही-भेरी

बजाओ, सब मिलकर आनन्दध्वनि करो ; पानकी बीबी स्वयंवरा होंगी आज !"

उसी समय नहले-दहलेने अपनी-अपनी बाँसुरी बजाना शुरू कर दिया, दुरी-तिरो तुरही-भेरी लेकर तैनात हो गईं। अचानक इस तरहकी आनन्द-तरंगसे पहलेकी वह कानाफूँसी और मुंह देखादेखी सब बन्द हो गई।

आनन्द-उत्सवमें स्त्री-पुरुष सब एकसाथ मिलकर कितनी बातें, कितनी हँसी, कितने मजाक करने लगे ; मसखरी-मसखरीमें कितनी मनकी बातें कहीं, व्यंग्य-ही-व्यंग्यमें कितनी नाराजगी और अविश्वास जाहिर किया, उच्च हास्यमें कितनी तुच्छ बातें होती रहीं, कोई ठीक है ! घने जंगलमें जोरोंकी हवा चलनेपर जैसे शाखा-शाखाओं और पत्तों-पत्तोंमें, लता-लताओं और पेड़ों-पेड़ोंमें परस्पर नाना प्रकारसे हिलना-डुलना मिलना-जुलना होता रहता है, इनमें भी वैसा ही होने लगा।

ऐसे कोलाहल और आनन्दोत्सवमें बाँसुरी सवेरेसे ही बड़े मीठे सुरमें शहाना रागिनी गाने लगी है। आजके इस आनन्दमें गम्भीरताका, मिलनमें व्याकुलताका, विश्वदृश्यमें सुन्दरताका और हृदयोंमें प्रीतिकी वेदनाका संचार होने लगा। जो अच्छी तरह प्रेम नहीं करते थे वे खूब प्रेम करने लगे ; और जो खूब प्रेम करते थे वे मारे आनन्दके उदास हो गये।

पानकी बीबी रंगीन कपड़े पहनकर तमाम दिन एक गुप्त छाया-कुञ्जमें बैठी रही। उसके कानोंमें भी दूरसे शहानाकी तान पहुंच रही थी, और आँखें उसकी मुंदी आती थीं। सहसा

उसने आँखें खोलकर देखा कि सामने राजपुत्र बैठा हुआ उसके मुंहकी तरफ देख रहा है। उसे कँपकँपी आ गई, दोनों हाथोंसे अपना मुंह ढककर वह जमीनपर धूलमें लोट गई।

राजपुत्र दिन-भर अकेले समुद्रके किनारे घूमता हुआ उसकी विह्वल दृष्टि और लज्जाके मारे जमीनपर लोटनेकी बातपर मन-ही-मन आलोचना करने लगा।

रातको सैकड़ों-हजारों दीपोंके प्रकाशमें, मालाओंकी सुगन्धमें, बाँसुरीकी धुनमें, वस्त्र और अलंकारोंसे सुसज्जित मचलते हँसते हुए युवकोंकी सभामें एक तरुणी कम्पित चरणोंसे माला हाथमें लिये आई और धीरे-धीरे राजपुत्रके सामने आकर मस्तक झुकाके खड़ी हो गई। पर अभिलषित कण्ठ तक न उसकी माला पहुंची, और न अभिलषित मुँहकी ओर वह आँख उठाकर निहार ही सकी। उसकी दशा देखकर राजपुत्रने स्वयं ही सिर झुका दिया; और माला स्वयंवराके हाथसे स्खलित होकर उसके कण्ठमें आ पड़ी। चित्रवत् निस्तब्ध सभा सहसा एक अपूर्व आनन्दोच्छ्वाससे गूँज उठी।

सबोंने वर-वधूको बड़े आदरके साथ सिंहासनपर बिठाया; और सबोंने मिलकर राजपुत्रका राज्याभिषेक किया।

इसके बाद एक दिन समुद्र-पारकी निर्वासित दुखिया रानी सोनेकी नावपर बैठकर अपने पुत्रके नवीन राज्यमें आ गईं।

तसवीरोंका गुट्ट सहसा आदमी बन गया। अब यहाँ पहलेकी तरह अविच्छिन्न शान्ति और अपरिवर्तनीय गम्भीरता नहीं है। संसार-प्रवाहने अपने सुख-दुःख, राग-द्वेष, सम्पद्-

विपद्के साथ-साथ इस नवीन राजाके नये राज्यको परिपूर्ण और हरा-भरा कर डाला है। अब यहाँ कोई अच्छा है तो कोई बुरा, किसीको विषाद है तो किसीको कुछ, सब तरहके आदमी हैं। अब सब अलंघ्य विधि-विधानके अनुसार निरीह नहीं, बल्कि अपनी इच्छाके अनुसार सज्जन और दुर्जन हैं।

मुक्तिका उपाय

असलमें, फकीरचन्द बचपन ही से गम्भीर प्रकृतिके आदमी थे। बड़े-बूढ़ोंमें बैठते तो जँच जाते। ठंडा पानी, सरदी-ओस और हँसी-मजाक उन्हें कतई न सुहाता। एक तो वैसे ही चेहरा गम्भीर, उसपर उसके चारों तरफ काले रंगका ऊनी गुलूबन्द लपेटे रहते; इससे वे बहुत ही ऊँचे दरजेके आदमी मालूम पड़ते। इसके सिवा, बहुत ही कम उमरमें उनके ओठ और ठोड़ी-गाल दाढ़ी-मूछोंसे बहुत ज्यादा ढक जानेके कारण चेहरेपर ऐसी कोई जगह ही न रह गई कि जहाँसे हँसी निकलती और दिखाई देती।

उनकी स्त्री हेमवतीकी उमर कम है; और उसका मन सांसारिक विषयोंमें खूब ज्यादा लगा हुआ है। वह बंकिम बाबूके उपन्यास पढ़ना चाहती है और पतिको ठीक देवता जैसा मानकर उनकी पूजा करके तृप्त नहीं होना चाहती। वह जरा-कुछ हँसी-मजाक और राग-रंग पसन्द करती है; खिलता हुआ

फूल जैसे हवा और प्रभातके प्रकाशके लिए व्याकुल हो उठता है उसी तरह वह अपने नव-यौवनके समय पतिसे लाड़-प्यार और हँसी-मसखरी पानेकी काफी आस रखती है। लेकिन पतिदेव छुट्टी पाते ही उसे 'भागवत' पढ़ाते, शामको 'भगवद्गीता' सुनाते और उसकी आध्यात्मिक उन्नतिके लिए बीच-बीचमें कभी-कभी शारीरिक शासन करनेमें भी कसर नहीं रखते। जिस दिन हेमवतीके तकियाके नीचेसे 'कृष्णकान्तका वसीयतनामा' निकला था उस दिन उस बेचारी सौभाग्यवती युवतीकी सारी रात आँसू बहाते बीती, और तब कहीं फकीरचन्दको तसल्ली हुई। एक तो उपन्यास पढ़ना, और फिर पतिदेवको धोखा देना! कुछ भी हो, लगातार आदेश, अनुदेश, उपदेश, धर्मनीति और दण्ड-नीतिकी चोट सहने-सहते अन्तमें हेमवतीके मुंहकी हँसी, मनका सुख और यौवनका आवेग बिलकुल जाता रहा; और इस तरह उसके पतिदेवको नारी-पीड़नमें पूरी सफलता मिल गई।

पर अनासक्तोंके लिए संसारमें अनेक विघ्न हैं। एकके बाद एक, फकीरके एक लड़का और एक लड़की पैदा हुई, जिससे गृहस्थीका बन्धन और भी बढ़ गया। पिताकी ताड़नासे इतने बड़े गम्भीर-प्रकृति फकीरचन्दको भी ऑफिसोंमें नौकरीकी उम्मेदवारीमें घूमना पड़ा, पर नौकरी मिलनेकी कोई भी उम्मीद नहीं दिखाई दी।

अन्तमें उन्होंने सोचा कि 'बुद्धदेवकी तरह मैं भी गृहस्थी त्याग दूँगा।' यह विचारकर एक दिन आधी रातको वे घर छोड़कर चल दिये।

२

बीचका थोड़ा-सा और इतिहास है, जिसका कहना जरूरी है। नौगाँव-निवासी छठीलालके एक ही लड़का था। नाम था माखनलाल। ब्याहके बाद जल्दी कोई बाल-बच्चा न होनेके कारण, पिताके अनुरोध और नवीनताके प्रलोभनसे, उसने एक और ब्याह कर लिया। इस ब्याहके बाद क्रमशः उनकी दोनों स्त्रियोंसे सात लड़कियाँ और एक लड़का पैदा हुआ।

मखनलाल आदमी बड़े शौकीन और चंचल-प्रकृतिके हैं, किसी भी तरहके भारी कर्तव्यके द्वारा अपनेको बन्धनमें डालना उन्हें कतई पसन्द नहीं, उनकी जीवन-नैयापर एक तो बाल-बच्चोंका पूरा भार, उसपर दोनों कर्णधारोंने मिलकर जब दोनों तरफसे जोरोंसे झोका मारना शुरू किया तो बिलकुल असह्य हो जानेसे उन्होंने भी एक दिन आधी रातको डुबकी लगाई।

बहुत दिनों तक उनका कोई पता ही न चला। कभी-कभी सुननेमें आता कि एक ब्याहमें कैसा सुख है, इस बातकी परीक्षा करनेके लिए उन्होंने काशीमें जाकर लुके-छिपे एक और ब्याह कर लिया है। सुनते हैं, अभागेको अब कुछ शान्ति मिली है। सिर्फ देशके आस-पास आनेके लिए कभी-कभी उनका मन चलता है, पर पकड़े जानेके डरसे आ नहीं सकते।

३

कुछ दिन इधर-उधर घूम-फिरकर उदासीन फकीरचन्द नौगाँव पहुंचे। सड़कके किनारे एक वटवृक्षके नीचे आसन

जमाकर एक गहरी साँस लेकर कहने लगे—"अहा, वैराग्य-मेवाभयं। दारा-पुत्र धन-जन कोई भी किसीका नहीं। का ते कान्ता कस्ते पुत्रः ?"—कहते-कहते उन्होंने एक गाना शुरू कर दिया :—

"सुन रे सुन, ओ रे ओ अबोध मन !
सुन साधुकी उक्ति, होगी मुक्ती,
उसी सुयुक्तिको तू कर रे ग्रहण।
भवकी शुक्ति तोड़, मुक्ति-मुक्ताका कर रे अन्वेषण,
ओ रे ओ, भोले मन, भोले मन !"

सहसा गीत बन्द हो गया—'अरे, ये कौन ? ये तो बापूजी मालूम होते हैं ! पता लगा लिया मालूम पड़ता है ? अब तो बड़ी मुसीबतमें आ फँसे ! फिर उसी गृहस्थीके अन्धकूपमें खींच ले जायँगे। ऊँ-हुंक्, भागना पड़ेगा।'

४

साधु फकीरचन्द झटपट पासके एक घरमें घुस गये। बूढ़ा मकान-मालिक चुपचाप बैठा हुक्का पी रहा था। फकीरको घरमें घुसते देख पूछ बैठा—"कौन है ?"

फकीर—"बच्चा, मैं हूँ संन्यासी।"

वृद्ध—"संन्यासी ? देखूँ, देखूँ बेटा, जरा उजालेमें देखूँ ?"

इतना कहकर बुड्ढा उसे उजालेमें खींच ले गया, और उसके मुंहके आगे झुककर, बूढ़े आदमी जैसे बड़ी मुश्किलसे पोथी पढ़ते हैं उस तरह, उसका मुँह देख-देखकर बड़बड़ाने लगा—

"यही तो है हमारा माखन! वही नाक है, वही आँख हैं, सिर्फ माथेमें कुछ फर्क आ गया है; और उस चाँदसे चेहरेपर दाढ़ी-मूँछें छा गई हैं।"—कहते-कहते बूढेने फकीरके दढ़ियल मुँहपर दो-एक बार हाथ फेरा; और बोला—"बेटा, माखन!"

कहनेकी जरूरत नहीं कि बूढेका नाम छठीलाल है।

फकीर बड़े चक्करमें पड़ गया; बोला—"माखन! मेरा नाम तो माखन नहीं है। पहले मेरा नाम कुछ भी क्यों न हो, अब मेरा नाम चिदानन्द स्वामी है। इच्छा हो तो परनानन्द भी कह सकते हो।"

छठीलाल—"बेटा, अब तुम अपनेको चिउड़ा बताओ, चाहे परमान्न, तू है मेरा माखन ही। बेटा, तुझे तो मैं नहीं भूल सकता। यह तो बताओ वेटा, किस दुःखसे तुमने गृहस्थी त्याग दी? किस बातकी कमी थी यहाँ? दो-दो बहूएँ हैं; बड़ीसे प्रेम न हो, छोटी तो है! लड़के-बालोंकी भी कमी नहीं। दुश्मनोंके मुँहपर राख पड़े, तुम्हारे सात लड़कियाँ हैं, एक लड़का है; और मैं बूढ़ा बाप हूं, सो और कितने दिन जीऊँगा, सब-कुछ तुम्हारा ही बना रहेगा।" फकीर सहसा चौंक पड़ा; बोला—"कैसी मुसीबत है? सुनते ही डर लगता है।"

अब सारा माजरा उसकी समझमें आ गया। वह सोचने लगा कि 'बुराई क्या है, दो-चार दिन बुड्ढेका पुत्र बनकर यहीं छिपा रहूँ, उसके बाद पता न लगनेपर बाप जब चले जायँगे, तब यहाँसे चलता बनूँगा।'

फकीरको चुपचाप देख बुड्ढेके मनमें कोई सन्देह न रह

गया। अपने नौकरको बुलाकर कहा—"अरे ओ किसना, सबको जाकर कह तो आ, हमारा माखन लौट आया है।"

५

देखते-देखते आदमियोंसे घर भर गया। मुहल्लेके लगभग सभी लोगोंने कहा, 'वही तो है!' किसी-किसीने थोड़ा-बहुत सन्देह भी प्रकट किया, पर विश्वास करनेके लिए लोग इतने व्यग्र थे कि सन्दिग्ध लोगोंपर उन्हें बड़ा गुस्सा आने लगा। मानो वे जान-बूझकर उनके रंगमें भंग डालने आये हों, मानो वे मुहल्लेके चौदह अक्षरके पयार छन्दको सत्रह अक्षरका बना बैठे हों। किसी भी तरह उसका संक्षेप हो जाय तो मुहल्लेके आदमियोंको आराम मिले। वे न तो भूत मानते हैं, न ओझाको बुलाते हैं। ताज्जुबकी कहानी सुनकर जब कि सब दंग हो गये हैं, तब वे प्रश्न छेड़ते हैं। इन लोगोंको एक तरहसे नास्तिक कहना चाहिए। अरे, तुम भूतपर विश्वास करो या न करो, उससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं; पर बूढ़े बापके खोये हुए लड़केपर भी विश्वास न करना, यह तो बड़ा हृदयहीनताका काम है। कुछ भी हो, सबकी जब डाट पड़ी, तो शक करनेवालोंका गिरोह चुप हो गया।

मुहल्लेके लोग फकीरचन्दकी पहाड़-सी अटल गम्भीरतापर जरा भी ध्यान न देकर उसे घेर बैठे; और कहने लगे—"ओफ्फोह! अब आप ऋषि बन गये हैं! तपस्वी हो गये हैं! हमेशा तो यार-दोस्तोंमें छनती रही, और आज हजरत अचानक महामुनि जमदग्नि बन बैठे! भई, बात क्या है?"

महामना फकीरचन्दको यह बात बहुत ही बुरी लगी ; पर क्या करते, सहनी पड़ी। एक आदमी तो बिलकुल उसके ऊपर आकर बैठ गया ; बोला—"अरे मखना, तू तो बिलकुल काला था रे, गोरा कैसे हो गया ?"

फकीरने जवाब दिया—"योगाभ्याससे।"

सबने कहा—"देखा, योगका कैसा प्रभाव है !"

एकने कहा—"इसमें आश्चर्य ही क्या! शास्त्रमें लिखा है, भीमने जब हनूमानकी पूँछ पकड़कर उन्हें उठाना चाहा, तो किसी भी तरह उठा न सके। यह कैसे हुआ ? वह भी तो योगबल था भाई !"

यह बात सबको माननी पड़ी।

इतनेमें छठीलालने आकर फकीरसे कहा—"बेटा, एक बार घरके भीतर हो आओ।"

अब तक यह बात फकीरके दिमागमें पैदा ही नहीं हुई थी ; सहसा उसके माथेपर बिजली-सी आ पड़ी। बहुत देर तक चुप रहकर, मुहल्लेवालोंके अनेक अनुचित हँसी-मजाकोंको हजम करके, अन्तमें बोला—"बच्चा, मैं साधु हो चुका हूँ, अब मैं घरमें नहीं घुस सकता।"

छठीलालने मुहल्लेके लोगोंको सम्बोधन करके कहा—"तो जरा आप लोगोंको तकलीफ करनी होगी। बहुओंको यहीं लिये आता हूँ। वे व्याकुल हो रही हैं।"

सब उठ गये। फकीर सोचने लगा कि इसी मौकेपर मारूँ एक दौड़, यहाँसे भाग चलूँ। पर रास्तेमें जाते ही मुहल्लेके

लोग कुत्तेकी तरह पीछा करेंगे, यह सोचकर बेचारेको बेबसीसे वहीं बैठा रहना पड़ा।

इतनेमें ज्यों ही माखनलालकी दोनों स्त्रियोंने प्रवेश किया, त्यों ही फकीरने उन्हें सिर झुकाकर नमस्कार करके कहा—"माताओ, मैं तुम्हारी सन्तान हूं।"

उसी क्षण फकीरकी नाकके आगे कड़े और चूड़ियों-शुदा एक हाथ तलवारकी तरह खेल गया; और फूटे काँसेकी तरह एक आवाज बज उठी—"अरे ओ मुँहजले, तूने माता किससे कहा?"

साथ ही और एक कण्ठने, और भी दो स्वर ऊँचेसे, मुहल्लेको कँपाते हुए गरजकर कहा—"तेरी आँखें फूट गईं क्या, दीखता नहीं? तुझे मौत भी न आई!"

अपनी स्त्रीके मुँहसे ऐसी मुहावरेकी भाषा सुननेका वह आदी न था, इसलिए अत्यन्त दीनतासे उसने हाथ जोड़कर कहा—"आप लोग गलत समझी हैं! चलिये, मैं उजालेमें खड़ा होता हूँ, जरा मुझे पहचानिये तो सही, मैं कौन हूँ?"

पहली और दूसरीने पारी-पारीसे कहा—"बहुत देख चुकी हूं! देखते-देखते आँखें घिस गई हैं। तुम नन्हेसे लल्ला नहीं हो, आज नये पैदा नहीं हुए हो! तुम्हारे दूधके दाँत टूटे जमाना गुजर चुका। अरे, तुझे मौत भूल गई है तो क्या मैं भी भूल जाऊँगी!"

ऐसी इकतरफा दाम्पत्य-वार्ता कब तक चलती रहती, कह नहीं सकते; कारण फकीर बिलकुल वाक्शक्ति-रहित होकर सिर झुकाये खड़ा था। इतनेमें अत्यन्त कोलाहल सुनकर और

सड़कपर भीड़ जमते देख छठीलालने घरमें प्रवेश किया। बोले—"इतने दिनों तक हमारे घरमें सन्नाटा बीत रहा था, जरा भी शोर-गुल न था। आज मालूम होता है कि हमारा माखन लौट आया!"

फकीरचन्दने हाथ जोड़कर कहा—"महाशयजी, अपनी पुत्रवधुओंके हाथसे मुझे बचाइये!"

"बेटा, बहुत दिन पीछे आये हो, इसीसे जरा असह्य मालूम पड़ता है। अच्छा, बेटी, तुम लोग अभी जाओ। माखन तो अभी यहीं है, उसे अब मैं किसी भी तरह नहीं जाने दूँगा।"

दोनों ललनाएँ विदा हो गईं। फकीरने कहा—"महाशयजी, आपका पुत्र क्यों गृहस्थी छोड़कर चला गया है, इसका मैंने पूरा अनुभव कर लिया है। आप मेरा प्रणाम लीजिये, मैं चला।"

बूढ़ेने ऐसे जोरसे रोना शुरू किया कि मुहल्लेके तमाम लोग समझ बैठे कि माखनने बापको पीटा है। वे 'हें-हें' करते हुए दौड़े आये। सबने आकर फकीरको चेता दिया—"ऐसा पाखण्ड यहाँ नहीं चल सकता। भले आदमीकी तरह रहना होगा।" एकने कहा—"ये परम-हँस थोड़े ही हैं, परम-बक हैं, बक! बगुला-भगत!"

गम्भीरता, दाढ़ी-मूँछ और गुलूबन्दके जोरसे फकीरको ऐसी बुरी-भली कभी न सुननी पड़ी थी। खैर, कुछ भी हो, फिर कहीं भाग न जाय, इस आशंकासे मुहल्लेके लोग चौकन्ने रहे। स्वयं जमींदारने गाँववालोंका पक्ष लिया।

फकीरने देखा, ऐसा कड़ा पहरा बैठा है कि बिना मरे यहाँसे निकलना ही मुश्किल है। वह अकेला घरमें बैठा हुआ गीत गाने लगा :—

"अब तू सुनके सुयुक्ति कर रे ग्रहण,
ओ रे ओ अबोध मन !"

कहना न होगा कि इस गीतका आध्यात्मिक अर्थ क्षीण हो चला है।

ऐसे तो किसी तरह दिन कट भी रहे थे। इतनेमें एक और आफत आ पड़ी। माखनके आनेकी खबर पाते ही दोनों स्त्रियोंके मायकेसे साले और सालियोंका एक झुण्ड और आ पहुंचा।

आनेके साथ उन लोगोंने सबसे पहले फकीरकी दाढ़ी-मूँछें नोचना शुरू किया ; कहने लगीं—"यह तो सचमुचकी दाढ़ी-मूँछ नहीं हैं, भेष बदलनेके लिए गोंदसे चुपका ली हैं !"

सब नाकके नीचेकी मूँछ पकड़कर खींचने लगीं तो बेचारे फकीरचन्द जैसे अत्यन्त महान् पुरुषके लिए अपने माहात्म्यकी रक्षा करना कठिन हो गया। इसके सिवा कानोंपर भी काफी आफत थी ; एक तो मलकर, दूसरे ऐसी-ऐसी भाषाओंका प्रयोग करके कि जिसके सुननेसे बिना मले ही कान लाल हो उठें !

इसके बाद उन लोगोंने फकीरको ऐसे-ऐसे गीतोंके नमूने सुनाये कि आधुनिक बड़े-बड़े नये पंडित भी उनकी आध्यात्मिक व्याख्या करनेमें हार मान जायँ। सोते वक्त बेचारेके गालोंपर स्याही और चूना पोत दिया गया। खाते वक्त कसेरूके बदले

घुइयाँ, नारियलके पानीके बदले हुक्काका पानी, दूधके बदले पीठीका धोवन देनेको तैयारियाँ की गई ; पाटाके नीचे सुपारी रखकर मजेकी पटक खिलाई, पूँछ बनाई, और सैकड़ों प्रचलित तरकीबोंसे फकीरकी अभ्रभेदी गम्भीरता मिट्टीमें मिला दी।

फकीरचन्द गुस्सेमें आकर, लाल-पीला होकर, झुंझलाकर चिल्लाकर किसी भी तरह उपद्रवकारियोंके मनमें भयका संचार न कर सका। उलटा सबोंके सामने भोंदू बुद्धू बना गया। इसके सिवा दरवाजेकी ओटमेंसे एक मीठे गलेकी कहकहादार हँसी कभी-कभी उसके कानोंमें पड़ती ; वह कुछ परिचित-सी मालूम देती, उससे मन उसका और भी दूना अधीर हो उठता।

परिचित कण्ठस्वर पाठकोंसे छिपा नहीं है। इतना कह देना काफी होगा कि छठीलाल किसी नातेसे हेमवतीके मामा लगते हैं। ब्याहके बाद, साससे बहुत तंग आकर पितृ-मातृहीन हेमवती कभी-कभी किसी-न-किसी नातेदारके यहाँ आकर आश्रय लिया करती है। बहुत दिनों बाद वह अपने मामाके यहाँ आकर नेपथ्यसे इस परम कुतूहलपूर्ण अभिनयको देख रही थी। उस समय हेमवतीमें स्वाभाविक रंग-प्रियताके साथ-साथ प्रतिहिंसा-प्रवृत्तिका उद्रेक हुआ था या नहीं, इस बातको चरित्र-तत्त्वज्ञ विद्वान् ही समझ सकते हैं, हमारी समझसे बाहर है।

जिनके साथ हँसी-मसखरीका रिश्ता था वे तो बीच-बीचमें दम भी ले लेते थे ; पर जिनसे स्नेहका नाता है उनसे छुटकारा पाना मुश्किल है। एक लड़के और सात लड़कियोंने उसके नाको दम कर दिया ; एक क्षणके लिए भी छोड़ना किसे कहते

है ! उसपर उनकी माताओंने बापके स्नेहपर दखल जमानेके लिए उन्हें बड़ी कड़ाईके साथ लगा रखा है। दोनों माताओंमें भी आपसमें अनबन खूब थी, दोनों ही इस कोशिशमें थीं कि मेरे बच्चे ज्यादा प्यार पायें। दोनों ही अपनी-अपनी सन्तानोंको हर वक्त उत्तेजित करती रहतीं। दोनों दल मिलकर पिताकी गरदनसे लिपटते, गोदमें बैठते, मुंह चूमते। इस तरह दोनों दल अपना-अपना प्यार दिखानेमें एक दूसरेको जीतनेकी कोशिश करने लगे। यह कहनेकी जरूरत ही नहीं कि बेचारा फकीरचन्द अत्यन्त निर्लिप्त-स्वभाव है, नहीं तो अपने बाल-बच्चोंको छोड़कर साधु ही क्यों होता ? और, बच्चे सब ऐसे हैं कि भक्ति करना जानते ही नहीं, उन्होंने साधुत्वपर मुग्ध होना सीखा ही नहीं ; इसलिए फकीरचन्दकी शिशु-जातिपर तिलमात्र भी अनुरक्ति नहीं। वे उन्हें कीट-पतंगोंकी तरह अपने शरीरसे दूर ही रखना चाहते हैं। फिलहाल वे प्रतिक्षण शिशु-टिड्डियोंसे आच्छन्न होकर, शुरूसे आखीर तक आँख-फोड़ू बर्जेस-टाइपके छोटे-बड़े फुटनोटोंसे भरे हुए ऐतिहासिक ग्रन्थकी तरह शोभा पा रहे हैं। उनमें और बच्चोंमें उमरका काफी तारतम्य है ; फिर भी वे उनके साथ प्रौढ़ सभ्य-जनोचित व्यवहार नहीं कर रहे हैं। बेचारे शुद्ध पवित्र फकीरचन्दकी आँखोंमें आँसू भर आते ; और इसमें सन्देह नहीं कि वे आनन्दाश्रु नहीं होते। दूसरेके बच्चे जब अनेक स्वरोंमें उन्हें "कक्का, कक्का" कहकर प्यार करते, तब उनका जी चाहता कि वे उनपर पाशविक शक्ति प्रयोग करें, पर डरसे कर नहीं सकते। मुंह और आँखें विकृत करके चुपचाप बैठे रहते।

अन्तमें फकीरचन्दने बड़े जोड़से हल्ला मचाकर कहा—"मैं तो जाऊँगा ही, देखूँ, मुझे कौन रोके रखता है !"

तब गाँवके लोगोंने एक वकीलको लाकर खड़ा कर दिया। वकीलने कहा—"जानते हैं, आपके दो स्त्रियाँ हैं ?"

फकीरचन्द—"जी, यहीं आकर पहले पहल मालूम हुआ।"

वकील—"अपने इस बड़े परिवारके भरण-पोषणका भार अगर आपने नहीं लिया, तो आपकी इन अनाथिनी दोनों स्त्रियोंको अदालतकी शरण लेनी पड़ेगी। पहलेसे कहे देता हूँ !"

फकीरचन्दको सबसे ज्यादा डर था तो बस अदालतका ही। यह बात उन्हें मालूम थी कि वकील लोग जिरह करते वक्त महापुरुषोंके मान-सम्मान और गाम्भीर्यका जरा भी खयाल नहीं करते, खुले आम अपमानित करते हैं ; और अखबारोंमें उसकी रिपोर्ट भी छपा देते हैं। फकीरचन्दने डबडबाती हुई आँखोंसे वकीलको विस्तृत आत्म-परिचय देनेकी कोशिश की ; और वकीलने उनकी चालाकी, हाजिर-जवाबी और झूठी बनावटी बातें बनानेकी असाधारण क्षमताकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। सुनकर फकीरको अपने हाथ-पैर नोंच-खानेकी इच्छा होने लगी।

छठालाल फकीरचन्दको फिर भागनेके लिए तैयार देखकर मारे शोकके अधीर हो उठे। मुहल्लेके लोग उन्हें चारों तरफसे घेरकर गाली-गलौज करने लगे ; और वकील साहबने उन्हें ऐसा डराया-धमकाया कि बेचारेका सारा उत्साह पस्त हो गया, बोली बन्द हो गई।

इसके बाद जब आठों बच्चोंने मिलकर गाढ़े स्नेहके साथ

चारों तरफसे चुपटकर उनके नाकों दम कर दिया, तब ओटमें खड़ी हुई हेमवती हँसे या रोये, कुछ निश्चय न कर सकी।

फकीरचन्दने तंग आकर, और-कोई चारा न देख, इसी बीचमें पिताको एक चिट्ठी डाल दी थी, जिसमें सब हाल साफ-साफ लिख दिया था। उस चिट्ठीको पाकर फकीरचन्दके पिता हरिचरण बाबू भी आ पहुंचे। पर मुहल्लेके लोग, जमींदार और वकील किसी भी तरह अपना दखल नहीं छोड़ना चाहते। यह फकीरचन्द नहीं है, माखनलाल ही है, इस बातके उन लोगोंने हजारों सबूत पेश किये ; यहाँ तक कि जिस दाईने माखनलालको पाल-पोसकर बड़ा किया था उस बुढ़ियाको भी पकड़ लाये। वह भी अपने काँपते हुए हाथसे फकीरचन्दकी ठोड़ी उठाकर, मुँहको अच्छी तरह देख-भालकर, उसकी दाढ़ीपर आँसू टपकाने लगी।

जब देखा कि इतनेपर भी फकीरचन्द बसमें नहीं आता, तब घूँघट निकालकर दोनों स्त्रियाँ स्वयं आ उपस्थित हुईं। मुहल्लेके लोग शरमके मारे उठकर बाहर चले गये। रह गये सिर्फ दोनों बाप, फकीरचन्द और बाल-बच्चे।

दोनों स्त्रियोंने हाथ हिलाकर फकीरसे पूछा—"कहाँ किस भाड़में, जमराजके किस द्वारपर जाना चाहता है, बता ?"

फकीरचन्द ठीक-ठीक जवाब न दे सके, इसलिए चुपचाप बैठे रहे ; पर चेहरेको देखकर तो यही अनुमान हुआ कि जमराजके किसी खास द्वारसे उनका कोई खास पक्षपात नहीं है ; फिलहाल किसी भी एक द्वारकी उसे शरण मिल जाय, तो उनकी जान बच जायँ। सिर्फ एक बार इस व्यूहसे किसी तरह निकल

मर जायँ। इतनेमें एक तीसरी रमणी-मूर्तिने घरमें प्रवेश करके फकीरचन्दको प्रणाम किया। फकीरचन्द पहले तो चकित हो गये ; फिर मारे खुशीके उछलकर बोले—"अरे, यह तो हेमवती है !"

अपनी या दूसरेकी स्त्रीको देखकर आज तक इतना प्रेम उनकी आँखोंमें इससे पहले कभी न दिखाई दिया था। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मूर्तिमती मुक्तिने स्वयं आकर दर्शन दिये हैं।

और एक आदमी मुँहपर दुशाला डाले छिपकर सब देख रहा था। उसका नाम है माखनलाल। एक अपरिचित निरीह व्यक्तिको अपने पदपर अभिषिक्त देखकर वह अब तक परम सुखानुभव कर रहा था ; अन्तमें जब उसने हेमवतीको उपस्थित देखकर समझा कि उक्त निरपराधी व्यक्ति उसका खास बहनोई ही है, तब उसके चित्तमें दया आ गई ; घरमें घुसकर बोला— "ऊँ हुंक्, अपने ही आदमीको इस तरह विपत्तिमें डालना महापातक है।"—अपनी दोनों स्त्रियोंकी ओर उंगलीसे इशारा करता हुआ बोला—"ये इनकी नहीं, मेरी ही रस्सी हैं, मेरी ही गागर हैं।"*

माखनलालके इस असाधारण महत्त्व और वीरतासे मुहल्लेके लोग दंग रह गये।

---

* बंगालमें ये दो चीजें आत्म-हत्याके लिए प्रसिद्ध हैं। आत्मा-हत्या करनेवाले गलेमें रस्सी और गागर बांधकर पानीमें डूब मरते हैं।

चारों तरफसे चुपटकर उनके नाकों दम कर दिया, तब ओटमें खड़ी हुई हैमवती हँसे या रोये, कुछ निश्चय न कर सकी।

फकीरचन्दने तंग आकर, और-कोई चारा न देख, इसी बीचमें पिताको एक चिट्ठी डाल दी थी, जिसमें सब हाल साफ-साफ लिख दिया था। उस चिट्ठीको पाकर फकीरचन्दके पिता हरिचरण बाबू भी आ पहुंचे। पर मुहल्लेके लोग, जमींदार और वकील किसी भी तरह अपना दखल नहीं छोड़ना चाहते। यह फकीरचन्द नहीं है, माखनलाल ही है, इस बातके उन लोगोंने हजारों सबूत पेश किये ; यहाँ तक कि जिस दाईने माखनलालको पाल-पोसकर बड़ा किया था उस बुढ़ियाको भी पकड़ लाये। वह भी अपने काँपते हुए हाथसे फकीरचन्दकी ठोड़ी उठाकर, मुँहको अच्छी तरह देख-भालकर, उसकी दाढ़ीपर आँसू टपकाने लगी।

जब देखा कि इतनेपर भी फकीरचन्द बसमें नहीं आता, तब घूँघट निकालकर दोनों स्त्रियाँ स्वयं आ उपस्थित हुईं। मुहल्लेके लोग शरमके मारे उठकर बाहर चले गये। रह गये सिर्फ दोनों बाप, फकीरचन्द और बाल-बच्चे।

दोनों स्त्रियोंने हाथ हिलाकर फकीरसे पूछा—“कहाँ किस भाड़में, जमराजके किस द्वारपर जाना चाहता है, बता ?”

फकीरचन्द ठीक-ठीक जवाब न दे सके, इसलिए चुपचाप बैठे रहे ; पर चेहरेको देखकर तो यही अनुमान हुआ कि जमराजके किसी खास द्वारसे उनका कोई खास पक्षपात नहीं है ; फिलहाल किसी भी एक द्वारकी उसे शरण मिल जाय, तो उनकी जान बच जायँ। सिर्फ एक बार इस व्यूहसे किसी तरह निकल

मर जायँ। इतनेमें एक तीसरी रमणी-मूर्तिने घरमें प्रवेश करके फकीरचन्दको प्रणाम किया। फकीरचन्द पहले तो चकित हो गये; फिर मारे खुशीके उछलकर बोले—"अरे, यह तो हेमवती है!"

अपनी या दूसरेकी स्त्रीको देखकर आज तक इतना प्रेम उनकी आँखोंमें इससे पहले कभी न दिखाई दिया था। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि मूर्तिमती मुक्तिने स्वयं आकर दर्शन दिये हैं।

और एक आदमी मुँहपर दुशाला डाले छिपकर सब देख रहा था। उसका नाम है माखनलाल। एक अपरिचित निरीह व्यक्तिको अपने पदपर अभिषिक्त देखकर वह अब तक परम सुखानुभव कर रहा था; अन्तमें जब उसने हेमवतीको उपस्थित देखकर समझा कि उक्त निरपराधी व्यक्ति उसका खास बहनोई ही है, तब उसके चित्तमें दया आ गई; घरमें घुसकर बोला—"ॐ हुंकू, अपने ही आदमीको इस तरह विपत्तिमें डालना महापातक है।"—अपनी दोनों स्त्रियोंकी ओर उंगलीसे इशारा करता हुआ बोला—"ये इनकी नहीं, मेरी ही रस्सी हैं, मेरी ही गागर हैं।"*

माखनलालके इस असाधारण महत्त्व और वीरतासे मुहल्लेके लोग दंग रह गये।

---

* बंगालमें ये दो चीजें आत्म-हत्याके लिए प्रसिद्ध हैं। आत्म-हत्या करनेवाले गलेमें रस्सी और गागर बाँधकर पानीमें डूब मरते हैं।

'दुलहिन'

बहुत पुरानी बात है। बचपनमें जिस स्कूलमें मैं पढ़ता था उसमें नीचेके दरजोंमें पंडित शिवनाथसे हमलोग पहाड़ा पढ़ा करते थे। उनकी डाढ़ी-मूछें सफाचट, सिरके बाल जड़ तक छँटे हुए और उसपर छोटी सी चोटी शोभा पाया करती थी। उन्हें देखते ही लड़कोंके प्राण सूख जाते थे।

प्राणियोंमें अकसर यह बात देखनेमें आती है कि जिनके डंक हैं उनके दाँत नहीं होते। पर हमारे पंडितजीमें दोनों बातें एक ही साथ मौजूद थीं। एक ओर थप्पड़-घूंसे हम पौधोंपर ओलोंकी तरह बरसते, तो दूसरी ओर कठोर वचन सुनकर सबको छठीकी याद आ जाती।

पंडितजीको इस बातका अफसोस था कि 'पुराने जमानेकी तरह गुरु-शिष्यका सम्बन्ध अब नहीं रहा; विद्यार्थी अब देवताके समान गुरुकी भक्ति नहीं करते।' इस तरह अपना अफसोस जाहिर करके वे अपनी उपेक्षित देव-महिमाको बालकोंके सिरपर जोरोंसे पटक दिया करते; और कभी-कभी गहरा हुंकार भरते; पर उसके भीतर इतनी ओछी बातें मिली रहतीं कि उसे देवताके वज्रनादका रूपान्तर समझ लेनेमें किसीको भ्रम नहीं हो सकता।

कुछ भी हो, हमारे स्कूलका कोई भी लड़का इस तीसरे दरजेके दूसरे विभागके देवताको इन्द्र, चन्द्र, वरुण अथवा कार्तिक न समझता था; सिर्फ एक ही देवताके साथ उनकी

तुलना होती थी, जिनका कि नाम जमराज है; और इतने दिनों बाद, अब तो यह माननेमें कोई दोष ही नहीं और न डर है कि हम लोग मन-ही-मन चाहते थे कि उक्त देवालयसे प्रस्थान करनेमें अब वे ज्यादा देर करें तो अच्छा है।

पर इतना तो अच्छी तरह समझ लिया गया था कि नर-देवताके समान दूसरी बला नहीं। सुरलोक-वासी देवता उपद्रव नहीं करते। पेड़से एक फूल तोड़कर चढ़ा देनेसे वे खुश हो जाते हैं; और न दो तो तकाजा नहीं करते। पर हमारे पंडित-देवता बहुत अधिककी आशा रखते थे; और हमसे जरा भी त्रुटि हो जाती, तो लाल-लाल आँखें निकालकर मारने दौड़ते थे। उस समय वे किसी भी तरफसे देवता-जैसे नहीं दिखाई देते।

लड़कोंको तकलीफ देनेके लिए हमारे शिवनाथ पंडितके पास एक अस्त्र था, जो सुननेमें मामूली, पर वास्तवमें बहुत खतरनाक था। वे लड़कोंके नये-नये नाम रखा करते थे। नाम यद्यपि शब्दके सिवा और कुछ नहीं, पर आदमी अपनेसे अपने नामको ज्यादा चाहता है। अपने नामकी प्रसिद्धिके लिए लोग क्या-क्या कष्ट नहीं सहा करते? यहाँ तक कि नामकी रक्षाके लिए लोग मरनेमें भी नहीं हिचकिचाते।

नामपर मर मिटनेवाले मानवके नामको विकृत कर देना उसकी जानसे भी प्यारी जगहपर चोट पहुंचाना है। और तो क्या, जिसका नाम भूतनाथ है उसे अगर नलिनीकान्त कहा जाय, तो उसके लिए भी वह असह्य है।

इससे एक खास तत्वकी जानकारी होती है, वह यह कि आदमी चीजकी अपेक्षा नाचीजको ज्यादा कीमती समझता है ; सोनेकी अपेक्षा बातको, प्राणोंकी अपेक्षा मानको और अपनेसे अपने नामको बड़ा मानता है।

मानव-स्वभावके इन अन्तर्निहित गूढ़ नियमोंके वशीभूत होकर पंडितजीने जब शशिशेखरका नाम 'छछूंदर' रख दिया तब वह बहुत ही दुःखित हुआ। खासकर इसलिए उसकी मर्म-व्यथा और भी बढ़ गई कि उक्त नामकरणकी वजहसे उसके चेहरेपर खास तौरसे गौर किया जाता है ; फिर भी अत्यन्त शान्त भावसे, सब सहते हुए, उसे चुपचाप बैठा रहना पड़ा।

पंडितजीने आशुतोषका नाम रखा था 'दुलहिन' ; और इस नामके साथ थोड़ा-सा इतिहास भी है।

आसू अपने दरजेमें बहुत ही सीधा-सादा और भोलाभाला लड़का था। वह हमेशा चुप बना रहता, लड़ना-झगड़ना तो उसकी जन्मपत्रीमें ही नहीं लिखा था ; बड़ा झेंपू था। उमरमें भी शायद वह सबसे छोटा था, सभी बातें सुनकर मुसकरा देता था ; पर पढ़ता खूब था। स्कूलके बहुतसे लड़के उसके साथ मित्रता करनेको उत्सुक थे, पर वह किसीके साथ खेलता न था। छुट्टी होते ही तुरत-फुरत घर चला जाता।

दोपहरको एक बजेके करीब उसके घरकी महरी दोनेमें कुछ मिठाई और छोटेसे गिलासमें पानी लेकर आया करती। आसूको इसके लिए बड़ी शर्म मालूम होती ; वह चाहता कि महरी किसी तरह लौट जाय तो मानो वह बच जाय। वह नहीं चाहता था

कि इस बातको कोई जाने कि स्कूलके छात्रके अलावा वह और भी कुछ है। मानो यह उसके लिए बहुत ही छिपानेकी बात थी कि वह घरका कोई है, अपने बाप-माका लड़का है, भाई-बहिनोंका भाई है; इस विषयमें हमेशा उसकी यही कोशिश रहती कि कोई लड़का उसकी कोई भी बात जान न ले।

पढ़ने-लिखनेमें उसकी कोई त्रुटि न होती थी, सिर्फ किसी-किसी रोज स्कूल जानेमें जरा देर हो जाया करती थी। शिवनाथ पंडित जब उससे कारण पूछते, तो वह उसका कोई सदुत्तर न दे सकता था। इसके लिए कभी-कभी उसे बड़ी फटकार सहनी पड़ती थी। पंडितजी उसे घुटनोंपर हाथ रखकर पीठ नीची करके दालानकी सीढ़ियोंपर खड़ा कर देते थे; और चारों दरजोंके लड़के उस झेंपू लड़केको उस हालतमें देखा करते थे।

एक दिन ग्रहणकी छुट्टी थी। उसके दूसरे दिन, स्कूलमें चौकीपर बैठे हुए पंडितजीने देखा कि एक सिलेट और स्याही लगे बस्तेमें पढ़नेकी किताबें लपेटे हुए, और दिनकी अपेक्षा बहुत संकुचित भावसे, आसू क्लासमें घुस रहा है।

शिवनाथ पंडितने सूखी हँसी हँसते हुए कहा—"अच्छा, दुलहिन आ गई क्या?"

पढ़ाई खतम होनेपर, छुट्टी होनेके पहले, उन्होंने सब लड़कोंको सम्बोधन करके कहा—"सुनो रे, सब-कोई सुनो!"

पृथ्वीकी सारी मध्याकर्षण-शक्ति जोरोंसे बालकको नीचेकी ओर खींचने लगी, फिर भी छोटा-सा आसू अपनी बेंचपर धोतीका एक छोर और दोनों पैर लटकाकर, सब लड़कोंका लक्ष्यस्थल

बंनकर बैठा रहा। अब तक तो आसूकी काफी उम्र हुई होगी और उसके जीवनमें बहुतसे भारी-भारी सुख-दुःख-लज्जाके दिन आये होंगे, पर उस दिनके बालक-हृदयके इतिहासके साथ किसी दिनकी तुलना नहीं हो सकती। हलाँ कि बात बहुत छोटी-सी है, और दो शब्दोंमें खतम हो जाती है, फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि उसमें एक रस है। आसूकी एक छोटी बहन थी; उसके बराबरकी कोई साथिन या बहन न थी, इसलिए आसूके साथ ही वह खेला करती थी।

लोहेकी रेलिंगसे घिरा-हुआ गेट-वाला आसूका मकान है, सामने गाड़ी ठहरनेके लिए दालान है। उस दिन खूब वर्षा हो रही थी। जूता हाथमें लिये, सरपर छतरी ताने, जो दो-चार आदमी सामनेसे जा रहे थे, उन्हें किसी भी ओर ताकनेकी फुरसत न थी। बादलोंके उस अन्धकारमें, वर्षाके झमझम-झमझम शब्दमें, तमाम दिनकी छुट्टीमें दालानकी सीढ़ियोंपर बैठा आसू अपनी बहनके साथ खेल रहा था।

उस दिन उनके गुड्डा-गुड़ियोंका ब्याह था। उसीकी तैयारीके बारेमें आसू अत्यन्त गम्भीरताके साथ अपनी बहनको उपदेश दे रहा था।

अब सवाल उठा कि पुरोहित किसे बनाया जाय? बालिका चटसे दौड़ी गई और एक आदमीसे पूछने लगी—"क्यों जी, तुम हमलोगोंके पुरोहित बनोगे?"

आसूने पीछे मुँह फेरकर देखा कि शिवनाथ पंडित अपनी भीजी छतरी समेटे पानीसे तर-बतर बरामदेमें खड़े हैं। रास्तेसे

जा रहे थे, बारिश ज्यादा होनेसे यहाँ ठहर गये हैं। बालिका उन्हें पुरोहित बननेके लिए आग्रह कर रही है।

पंडितजीको देखते ही आसू अपने खेल और बहन दोनोंको छोड़-छाड़कर एक दौड़में मकानके अन्दर भाग गया। उसका छुट्टीका दिन बिलकुल ही मिट्टीमें मिल गया।

दूसरे दिन शिवनाथ पंडितने जब सूखी हँसीके साथ भूमिकाके रूपमें इस घटनाका उल्लेख कर आसूका नाम 'दुलहिन' रख दिया, तब उसने, पहले जैसे सभी बातोंमें मुसकरा देता था वैसे ही मुसकराकर, अपने चारों तरफकी हँसीमें शामिल होनेकी कोशिश की; इतनेमें घंटा बज गया, सब दरजोंके लड़के बाहर चले गये, और दोनेमें थोड़ी-सी मिठाई और चमकते हुए फूलके गिलासमें पानी लिये महरी दरवाजेपर आ खड़ी हुई।

उस समय हँसते हँसते उसका मुँह और कान सुर्ख हो उठे, व्यथित ललाटकी नसें फूल उठीं, और वेगसे निकलते हुए आँसू रोके न रुक सके।

पंडितजी आराम-घरमें जलपान करके निश्चिन्त मनसे हुक्का पीने लगे। लड़के बड़े आनन्दसे आसूको घेरकर 'दुलहिन' 'दुलहिन' कहकर हल्ला मचाने लगे। छुट्टीके दिनका अपनी छोटी बहनके साथ खेला-हुआ वह खेल आसूकी दृष्टिमें अपने जीवनका एक सबसे बढ़कर लज्जाजनक भ्रम मालूम होने लगा; उसे विश्वास न हुआ कि दुनियाके आदमी कभी भी उस दिनकी बातको भूल जायेंगे।

एक चितवन

गाड़ीपर चढ़ते वक्त जरा-सा मुंह फेरकर वह मुझे अपनी अन्तिम चितवन दे गई।

इतने बड़े संसारमें उतनी-सी चीजको मैं रखूँ कहाँ?

दंड-पल-क्षण जहाँ रात-दिन कदम न रखते हों, ऐसी जरा-सी जगह कहाँ मिले?

बादलोंके सुनहले रंग जिस संध्यामें विलीन हो जाते हैं, यह चितवन क्या उसी संध्यामें बिला जायगी?

नागकेशरकी सम्पूर्ण सुनहली रेणु जिस मेहसे धुल जाती है, यह भी क्या उसी मेहसे धुल जायगी?

संसारकी हजारों चीजोंके बीच बिखरी रहनेसे वह रहेगी क्यों; हजारों बातोंके जंजालमें, हजारों वेदनाओंके ढेरमें?

उसका वह क्षण-भरका दान संसारके और सबको पीछे छोड़कर मेरे ही हाथमें आ पहुंचा है। उसे मैं गीतमें गूँथकर छन्दमें बाँधकर सौन्दर्यकी अमरावतीमें रख दूंगा।

संसारमें राजाका प्रताप और धनीका ऐश्वर्य मरनेके लिए ही होता है। पर आँखोंके आँसुओंमें क्या वह अमृत नहीं है जो पल-भरकी चितवनको चिरकाल तक जीवित रख सके?

गीतके सुरने कहा—"अच्छा, मुझे दो। मैं राजाके प्रतापको नहीं छूता, धनीके ऐश्वर्यको भी नहीं; बल्कि मेरे लिए तो ये छोटी-छोटी चीजें ही चिरकालका धन हैं; इन्हींसे मैं असीमके गलेका हार गूँथा करता हूँ।"